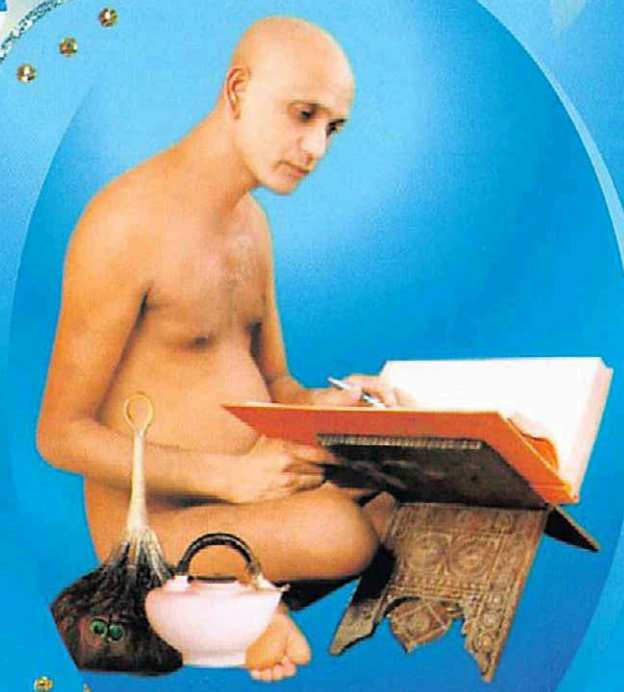

आचार्य वसुनन्दी जी मुनिराज

'जीत और हार'
आपकी सोच पर ही निर्भर करती है
मान लो तो हार होगी और
ठान लो तो जीत होगी।

मुद्रक : श्रीवसु ग्राफिक्स, दिल्ली

श्रीमत्सकलकीर्ति आचार्य विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

संपादन : आचार्य वसुनन्दी जी मुनिराज

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य
श्री शांतिसागर जी मुनिराज

अन्तर्मनः तपस्वी आचार्य
श्री पायसागर जी मुनिराज

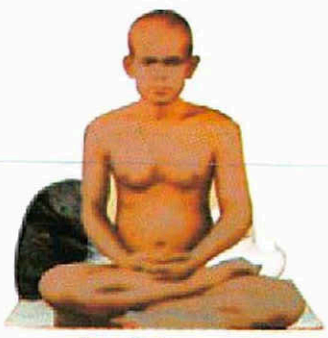

निस्पृही संत आचार्य
श्री जयकीर्ति जी मुनिराज

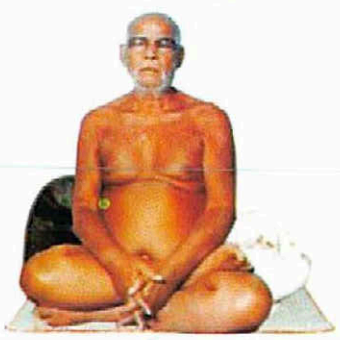

भारत गौरव आचार्य
श्री देशभूषण जी मुनिराज

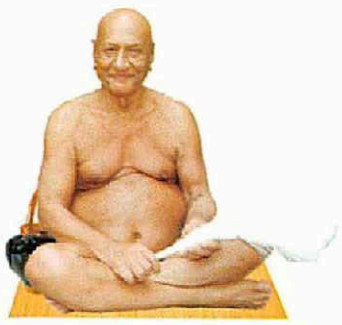

राष्ट्र संत श्वेतपिच्छाचार्य
श्री विद्यानंद जी मुनिराज

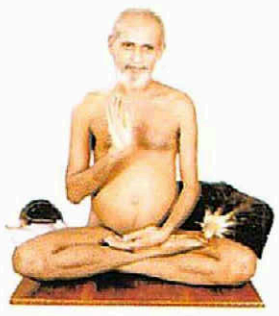

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के

53 वें मुनि दीक्षा दिवस

के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

श्रीमत्सकलकीर्ति आचार्य विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

पुण्यार्जक श्रावक

* श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री राजेश जैन
* श्रीमती मोनिका जैन ध.प. श्री अमित जैन
* श्रीमती शिल्पी जैन ध.प. श्री आकाश जैन

नेहरु रोड़, बड़ौत (उ.प्र.)

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के
53 वें मुनि दीक्षा दिवस
के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

श्रीमत्सकलकीर्ति आचार्य विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

संपादन
आचार्य वसुनन्दी जी मुनिराज

संस्करण : प्रथम–1500 प्रतियाँ सन् 2001
द्वितीय–1500 प्रतियाँ सन् 2004
तृतीय–1000 प्रतियाँ सन् 2016
I.S.B.N. No. : 81-878280-29

ग्रंथ : श्री धन्यकुमार चरित्र
ग्रंथकार : श्रीमत्सकलकीर्ति आचार्य विरचित
पावन आशीष : प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
सम्पादक : प.पू. आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य : स्वाध्याय

मुद्रक : श्रीवसु ग्राफिक्स, दिल्ली।

सम्पादकीय

- आचार्य वसुनंदी मुनि

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं।।17।।द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं-

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।। (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुपयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं-

प्रथमानुयोग-मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः।।43।।र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय - सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि- निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है अर्थात असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के कारणों एवं त्रिलोक संबंधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं व अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

तिथि - फाल्गुन शुक्ला पंचमी
वी.नि.स. 2542, रविवासरे
स्थान - अशोक नगर, दिल्ली
वि.सं. 2072
जन्मकल्याणक महोत्सवे

ॐ ह्रीं नमः
जिनचरणानुचरः समानुरन्तः
कश्चिदज्पज्ञ पापभीरुः निर्ग्रन्थः सूरि
दिनांक 13/3/2016

आद्य दृष्टव्य

आचार्य भगवन् सकलकीर्ति महाराज द्वारा रचित यह ("श्री धन्यकुमार चरित्र") चरित्रों, ग्रंथों की श्रृंखला में अनुपमेय है, इस ग्रंथ में श्री धन्य कुमार जी के वर्तमान चरित्र के साथ-साथ कुछ पूर्व भवों का भी कथन किया गया है। इस चरित्र की भाषा अत्यंत सरल, सहज, हृदय ग्राह्य है इसमें आहार दान की विधि, फल आदि का अच्छा कथन किया गया है। आहार दान की अनुमोदना करने मात्र से, तथा पंच नमस्कार मंत्र व अणुव्रतों को ग्रहण कर अकृतपुण्य स्वर्गाधिकारी हुआ। आहार दान का फल अन्य जैन ग्रंथों में भी विस्तार के साथ कहा गया है, आहारादि दान देने वाला दाता परम्परा से मोक्ष का पात्र होता है। आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी आहारादि दान का फल इस प्रकार बताते हैं-

दिण्णई सुपत्त दाणं, विसेसदो होइ भोग सग्ग मही।

णिव्वाण सुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवीरं देहिं।।16।। र.सा.

अर्थ- सुपात्र को दान देने से विशेष रूप से भोग व स्वर्ग की प्राप्ति एवं परम्परा से निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इह णिय सुवित्त वीयं, जो ववइ जिणुत्त सात्त खेत्तेसु।

सो तिहुवण रज्जफलं, भुंजदि कल्लाण पंच फलं।।18।। र.सा.

अर्थ- इस लोक में जो पुरुष जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित सप्त क्षेत्रों में अपने न्यायोपार्जित श्रेष्ठ धन रूपी बीज को बोता है वह व्यक्ति तीन लोक का राज्य व पंच कल्याण रूपी फल को प्राप्त करता है।

सत्तंग रज्ज णवणिहि, भंडार सडंग बल चउद्दस रयणं।

छण्णवदि सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्त दाण फलं।।20।। र.सा.

अर्थ- सप्ताङ्ग राज्य, नवनिधि कोष, छह प्रकार की सेना, चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्रियाँ और वैभव यह सब सुपात्र दान का फल है।

आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में दान की महत्ता बताते हुए कहते हैं-

गृह कर्मणाडपि निचितं कर्म विर्माष्टं खलु गृह विमुक्तानाम्।

अतिथीनां प्रति पूजा रुधिर मलं धावते वारि।।114।। र.श्रा.

अर्थ- जिस प्रकार जल खून के धब्बे धो देता है, उसी प्रकार अतिथि जनों की प्रतिपूजा गृहस्थों से अर्जित पापों को नष्ट कर देती है।

कथा नायक श्री धन्य कुमार जी ने मुनिराज से जब अपने पूर्वभव पूछे थे, तब मुनिराज ने कहा कि तुम्हारी माँ मृष्टदाना ने एक ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दिया था तथा आपने उसकी भावभीनी अनुमोदना की जिससे तुम अत्यंत दीन-हीन, निर्धनता की अवस्था से मुक्त हो स्वर्ग के देव हुए वहाँ से अपनी पूर्व आयु पर्यंत स्वर्ग के सुख भोग कर आज धन्यकुमार हुए हो। वह अकृतपुण्य दीन-हीन व निर्धन किस पूर्वोपार्जित कर्म से हुआ ऐसा पूछने पर महाराज श्री ने बताया कि धन्य कुमार के जीव ने (अपने अकृत पुण्य के पूर्व के पूर्वभव में) सेठ द्वारा पूजा व धर्म कार्य सम्पन्न करने के लिए जो द्रव्य दिया था, उस द्रव्य की आपने उस पूजा व धर्म कार्य में न लगाकर स्वयं भक्षण कर लिया। जिसके फल स्वरूप आप नरकादि के दुःखों को भोगकर अकृत पुण्य हुए थे। जो व्यक्ति धर्म के लिए देय, उद्घोषित द्रव्य को उसी धर्म कार्य में न लगाकर स्वयं भक्षण कर लेता है तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह कुष्ठ रोग आदि दारुण रोगों को भोगता हुआ अत्यंत संक्लेशता से मृत्यु को प्राप्त करता हुआ नरक, निगोद, तिर्यंच गति के दुःखों को भोगता हुआ मनुष्य गति में क्षय रोग, भगंदर, लूता, जलोदर, मूल व कुष्ठादि रोगों को, निर्धनता, संतान हीनता, विकलांग शरीर, कुरूपता एवं मति हीनता को प्राप्त होता है, ऐसा आचार्य भगवंतों ने कहा है। आचार्य भगवन् श्री कुन्द-कुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिणुद्धार पदिट्ठा जिण पूया तित्थ वंदण एसेस धणं।

जो भुंजदि सो भुंजदि, जिणदिट्ठं णरय गदि दुक्खं।।32।। र.सा.

अर्थ- जो व्यक्ति जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा और तीर्थयात्रादि के अवशिष्ट धन को भोगता है, वह नरक गति के दुःखों को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा (देखो) है।

पुत्त कलत्त विदूरो, दारिद्रो पंगु मूक बहिरंधो।

चाण्डालादि कुजादो, पूजा दाणादि दव्व हरो।।33।। र.सा.

अर्थ- पूजा, दानादि के द्रव्य का अपहरण करने वाला व्यक्ति पुत्र, स्त्री से रहित, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा और चाण्डाल आदि कुजातियाँ में उत्पन्न होता है।

इच्छिद फलं ण लब्भइ, जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।

वाहीणामायरो सो, पूयादाणाइ दव्व हरो।।34।। र.सा.

अर्थ- पूजा दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला, कभी इच्छित फल को प्राप्त नहीं करता है, कदाचित् प्राप्त कर भी ले तो कभी भेग नहीं पाता है और उसका शरीर व्याधियों का घर बन जाता है।

गद हल्थ पाद णासिय, कण्ण उरंगुल विहीण दिट्ठीए।

जो तिव्व दुक्ख मूलो, पूया दाणाइ दव्व हरो।।35।। र.सा.

अर्थ- जो व्यक्ति पूजा, दान के द्रव्य का अपहरण करता है, वह हाथ, पैर, नासिका, कान, छाती, अंगोपाङ्ग नेत्र ज्योति से रहित (जन्मान्ध) हो तीव्र दुःखों के मूल को प्राप्त होता है।

इस ग्रंथ में तृतीय बात मुख्य रूप से कर्म सिद्धांत के सम्बन्ध में बताई गई, जब ब्रह्मचारी ने सेठ के द्वारा मंदिर की पूजा आदि व्यवस्था के लिये दिये धन का भक्षण किया तो वह नरकादि के दारुण दुःखों के मूल को प्राप्त हुआ, तथा आहार दान की अनुमोदना करके स्वर्गादि के सुख भोगकर मनुष्य गति में भी उत्तम व्यवस्था को प्राप्त किया। जैनमतानुसार प्रत्येक जीव कर्ता व भोक्ता है। जो कर्ता है वही जीव भोक्ता भी है कर्त्ता और भोक्ता अलग-अलग नहीं है जो भोजन करता है उसी का पेट भरता है, तथा जैसा भोजन करता है वैसा ही स्वाद आता है यथा मिश्री का मीठा तो मिर्च का चरपरा, नीम/करेला का कड़वा इत्यादि इसी प्रकार शुभकर्मों का फल पुण्य मय या सुख रूप तथा पाप कर्मों का फल दुःख रूप होता है। कर्ता व भोक्ता को यदि पृथक मान लें तो स्वयं कृत शुभाशुभ कर्म व्यर्थ ही हो जायेंगे, इसी बात को परम पूज्य आचार्य भगवन् अमितगति स्वामी जी द्वात्रिंशतिका में कहते हैं-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं त्वदीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्ते यद् लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।16।।

अर्थ- आत्मा के (जीव के) द्वारा पूर्व में जो कर्म किये हैं, वही आत्मा उनका शुभ या अशुभ फल प्राप्त करती है। यदि यह जीव दूसरे के द्वारा किये कर्मों के फलों को प्राप्त कर ले तो स्वयं किये गये कर्म निरर्थक ही होंगे जो कि कभी संभव नहीं हैं।

पुण्यात्मा जीव के पुण्योदय से त्रिलोक में दुर्लभ या दुसाध्य वस्तु भी सहज ही प्राप्त हो जाती है। जैसे धन्य कुमार जी को खाट के अधजले पायों में धन को प्रदान करने वाला व्यवस्था पत्र व धन मिला, जन्म के समय स्वर्णादि धन पूरित पात्र मिला, मार्ग में गमन करते समय कुटुम्बी कृषक के खेत में भी धन भरा घड़ा मिला, श्रेष्ठि की दुकान पर बैठते ही अच्छी चली इत्यादि पुण्य के ही फल हैं। पाप के उदय में मित्र भी शत्रु बन जाता है, धन भी मिट्टी बन जाता है, यथा अकृत पुण्य के पापोदय से रत्न भी अंगार बन गये, स्वर्ण रस्सी मिट्टी बन गई, सुकृत पुण्य द्वारा दिये चने भी वस्त्र से नीचे गिर गये। तथा धन्य कुमार के बाद उनके माता-पिता व भाईयों को यक्ष ने उस महल से बाहर निकाल दिया। अतः पुण्य-पाप स्थाई नहीं हैं। पुण्य कभी दगा नहीं देता तथा पाप किसी का सगा

नहीं होता। पाप जहर के समान मारक होता है, जो खायेगा सो मरेगा ही, पुण्य रूपी अमृत जो पीयेगा वह सुख निधि को प्राप्त करेगा।

आगे इस ग्रंथ में एक और बात मुख्य रूप से कही गई कि महामंत्र णमोकार के प्रभाव के सम्बन्ध में। जब धन्य कुमार जी को उनके छहों भाईयों ने ईर्ष्या वश, छल से वापिका में धकेल दिया था तब धन्य कुमार जी ने महामंत्र का स्मरण किया, जिससे जल देवता ने जल निकलने की नाली में से उन्हें बाहर निकाल दिया। पापी व्यक्ति सदैव दूसरों का अहित ही सोचते रहते हैं, उनके सोचने से दूसरे आ अहित तो नहीं होता अपितु स्वयं को ही पाप बन्ध होता है तथा उसके परिपाक से दारुण दुखों को भोगना पड़ता है। पुण्यात्मा व्यक्ति धन, वैभव, यश, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करके भी अनासक्त रहता है तथा अन्त में उससे विरक्त हो जिनदीक्षा को अंगीकार कर लेता है। पापात्मा जीव की आसक्ति विषय, कषायों एवं पापों में सदैव बनी रहती है, वह जीवन के अंत में भी उससे विरक्त नहीं हो पाता।

अंत में पुण्योदय से प्राप्त राज्य वैभव एवं सांसारिक सुखों को भोगकर पूण्योदय से उन्हें क्षणिक जानकर, अपनी आत्मनिधि को प्राप्त करने हेतु कथा नायक श्री धन्य कुमार जी सर्व चेतनाचेतन परिग्रह को जीर्णतृण सम त्याग कर दिगम्बर दीक्षा अंगीकार करते हुए भुभक्षु से मुमुक्षु अवस्था को प्राप्त हुए। उन्होंने तप करके एवं उत्तम समाधि को प्राप्त करके सर्वार्थसिद्धि नामक उत्तम विमान को प्राप्त किया। वहाँ तैंतीस (33) सागर की आयु धर्म ध्यान व तत्त्व चर्चा के साथ करके वहाँ से च्युत हो मनुष्य भव धारण कर उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ साधुओं व त्यागी प्रतियों को समाधिरस्तु आशीर्वाद एवं प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, मुद्रक आदि ग्राफिक्स, दिल्ली पुण्यार्जक द्रव्यदाता सुधी श्रावक को, एवं अन्य समस्त प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष सहयोगियों को भी धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

इस शास्त्र के सम्पादन के कार्य में मुझ अल्पज्ञ द्वारा जो भी त्रुटि रह गयी हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए संशोधन हेतु सुझाव देने का कष्ट करें। तथा सुधी पाठक गण भूल सुधारते हुए, विनय पूर्वक विशुद्ध भावों के साथ स्व-पर हितार्थ समीचीन विधि से स्वाध्याय करें।

''अलमति विस्तरेण''

गुरू चरणाम्बुज चंचरीक
कश्चिदल्पस श्रमण सूरि
अशोक नगर, दिल्ली
13/3/2016

श्री जिनेन्द्राय नमः

ॐ

श्रीमत्सकलकीर्ति आचार्य विरचित

श्री धन्यकुमारचरित्र

(भाषानुवाद)

श्रीशोभित तुव वदनशशि हरै जगतजन ताप।
इह कारण पदपद्म तुव नमहूं नाथ! गतपाप।।
शिव सुखदायक आपको कहैं जगत में लोग।
क्यों न हरौ भव-गहनवनभ्रमण नाथ! हे शोक।।
अखिल अमित भूलोक में तुम सम नहीं दयाल।
दयापात्र फिर क्यों न मैं? विभो! दीनजनपाल!।।
आनन्दकन्द जिनेश! अब गह करके मम हाथ।
अतिगम्भीर जगजलधि से करौ पार जननाथ!।।
सकलकीर्ति मुनिराज ने संस्कृत में सुविशाल।
विरचौ धन्यकुमार को चरित अमितगुणमाल।।
तिहिं भाषा मैं अल्पधी लिखूं स्वपर सुख हेतु।
इस महान शुभकार्य में नाथ! बनहु सुखसेतु।।

ग्रन्थारम्भ

प्रथम अधिकार

गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, ज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक के अनुभोक्ता, त्रिभुवन के स्वामी, शिवरमणी के नाथ तथा गुणों के समुद्र श्री वर्द्धमान जिनभगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।।1।।

अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित, आरम्भ में धर्मतीर्थ के प्रवर्तन करने वाले, धर्म के स्वामी तथा अनन्त गुणों के आकर, श्री वृषभनाथ भगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।।2।।

सम्पूर्ण मङ्गल के करने वाले, लोकश्रेष्ठ, सज्जन पुरूषों के लिये आश्रयस्थान तथा जगत के हित करने वाले शेष समस्त तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।3 ।।

मनुष्य, देव और विद्याधरों के अधिपति तथा गणधरादि से शोभित, ढ़ाई द्वीप में विहार करने वाले जो श्री सीमन्धर स्वामी प्रभृति मोक्षमार्ग के प्रकाश करने वाले बीस तीर्थंकर हैं, उन्हें विनत मस्तक से मैं नमस्कार करता हूँ ।।4 ।।5।।

ये उपर्युक्त तीर्थंकर तथा अन्य जो त्रिकाल में होने वाले जो तीर्थंकरादि महापुरूष हैं, मेरे द्वारा नमस्कार तथा स्वतन किये हुये, वे सब मेरे आरम्भ किये हुये काम की सिद्धि के लिये हों ।।6।।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म तथा शरीर से विरहित, सम्यक्त्वादि आठ महागुणों से विभूषित, तीन लोक के शिखर पर आरूढ़, इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि से नमस्कार किये हुये, अनन्त गुणों के स्थान तथा उत्तम गुणों की अभिलाषा करने वाले भव्य पुरूषों द्वारा ध्यान करने योग्य सिद्ध भगवान का मैं प्रतिदिन स्मरण करता हूँ ।।7।।8।।

छत्तीस गुण विराजमान, दर्शनाचार, ज्ञानाचारादि प्रभृति पञ्चाचार के परिपालन करने में तत्पर, त्रिभुवन के द्वारा अभिवन्दनीय तथा शिष्यों पर दया करने वाले आचार्यों के लिये मैं अभिवन्दन करता हूँ ।।9।।

जो अपने जन्म रूप आताप के नाश करने के लिये अंग पूर्व रूप पीयूष रस का स्वयं पान करते हैं तथा अन्य भव्य जीवों को पिलाते हैं, ऐसे उपाध्यायों का अपने आत्मस्वरूप कर समुपलब्धि के लिये मैं स्तवन करता हूँ ।।10।।

जो अखण्ड रत्नत्रय तथा आश्चर्यजनक योग का त्रिकाल साधन करते हैं, वे साधुराज शिव (मोक्ष) प्राप्ति के लिये मुझे शक्ति प्रदान करें।।11।।

सम्पूर्ण ऋद्धियों तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान से विभूषित, गुणों के समुद्र, त्रिभुवनाधिपति (देवेन्द्रों) से वंदनीय तथा पूज्यनीय और सम्पूर्ण अंङ्गो की रचना करने में सुचतुर वृषभसेन प्रभृति गौतमगणधर पर्यंत सर्व गणधरादि मेरे द्वारा स्तुत्य (स्तवन किये) अपनी- अपनी बुद्धि के प्रदान करने वाले हों ।।12।।13।।

सम्पूर्ण सिद्धान्त रूप नीरधि के पार को प्राप्त हुये, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, रूप अनर्घ्य रत्न से अलंकृत, परिग्रह रहित तथा दिशा रूप वस्त्र के धारण करने वाले और कितने ही कुन्दकुन्दादि विद्वान ऋषिराज इस संसार में प्रसिद्ध हुये हैं तथा गुणों से गुरुत्व पद को धारण करने वाले हैं। उन सब उत्तम-उत्तम महात्माओं का मैं स्तवन करता हूँ।।14।।15।।

ग्यारह अङ्ग चतुर्दश पूर्व तथा प्रकीर्ण रूप शरीर के धारण करने वाली, सम्यग्दर्शनादि रत्नालंकार से विराजित, सप्ततत्त्व, नव पदार्थ के वर्णन से युक्त, अनन्त सुख देनी वाली, गुणों से विभूषित, जिन भगवान के मुख कमल से उत्पन्न तथा गणधर भगवान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त, भारती (सरस्वती) जो कि मेरे द्वारा स्तवन की हुई तथा नमस्कार की हुई है, मेरे लिए सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति में कारण अथवा सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि के लिये हो ।।16।।17।।

बाह्य तथा अन्तरङ्ग परिग्रह से विनिर्मुक्त, योग्य, उत्तम-उत्तम गुणों से विभूषित, सम्पूर्ण भव्य पुरुषों के हित करने में तत्पर, संसार रूप समुद्व के पार को प्राप्त हुये तथा सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के साधन करने वाले धन्यकुमार आदि सब योगिराजों का, उनके गुणों की समुपलब्धि के लिये मैं स्तवन करता हूँ।। 18।।19।।

इस प्रकार उत्तम-उत्तम मंङ्गल करने वाले उत्कृष्ट तीर्थंकर भगवान, जिनवाणी तथा आचार्यादि साधुओं का स्तवन तथा अभिवन्दन करके मंगल सिद्धि, अपने आरम्भ किये हुये कार्य की सिद्धि, विघ्ननाश, मोक्षसम्प्राप्ति तथा कर्मनाश प्रभृति कार्यों की सिद्धि के लिये अपने और दूसरों के हित की इच्छा से उत्तम वैश्यकुलदीपक तथा सर्वार्थ सिद्धि में जाने वाले धन्यकुमार का शुभ और पवित्र चरित्र निर्माण करूंगा।। 20।। 21।।

जिस चरित्र के सुनने से भव्य-पुरूषों के राग रूप शत्रु तो नाश को प्राप्त होंगे और संवेग तथा समाधि आदि गुणसमूह समुद्भूत होंगे।। 23।।

ग्रन्थकार (सकलकीर्ति आचार्य) कहते हैं कि इस धन्यकुमार के चरित्र के द्वारा स्वर्ग की सम्पदा के सुख का कारण, बड़े-बड़े उत्तम पात्रों के दान का शुभ फल वर्णन करूंगा।। 24।।

यही कारण है कि- धन्यकुमार केवल सुपात्रदान के फल से राज्य सम्पदा से विराजित (सुशोभित) तथा स्वर्ग की लक्ष्मी का उपयोग करने वाला हुआ।। 25।।

इस विशाल वसुन्धरा मण्डल पर जम्बूवृक्ष से उपलक्षित एक लाख योजन विस्तार वाला तथा समुद्र से वेष्टित गोलाकार जम्बूद्वीप है।। 26।।

उसके मध्य में अत्यन्त मनोहर एक लाख योजन ऊँचा और जिनमन्दिर, देव तथा देवाङ्गनाओं से शोभायमान सुवर्णमय सुमेरू शैल है।। 27।। उसके दक्षिण भाग में अतिशय सुन्दर तथा विद्याधर मनुष्य और देवताओं से

शोभायमान धनुषाकार उत्तम भरतक्षेत्र है।। 28।। उसके ठीक बीच में अत्यन्त सुरम्य, हृदयहारी, धर्म के सम्पादन का कारण, विद्वान तथा उत्तम-उत्तम कुल में समुत्पन्न धर्मात्मा पुरूष तथा जिन भगवान आदि से विभूषित आर्य खण्ड है।। 29।। उसमें उत्तम-उत्तम मनुष्यों से पूर्ण, ग्राम, खेट तथा पुर आदि से सुन्दर, स्वर्ग और मोक्ष की समुपलब्धि का हेतु भूत अवन्ती नाम का देश है।। 30।। जिसमें जगत के उपकार करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु, गणधर तथा केवलज्ञानी ये सब अपनी-अपनी विभूति के साथ विहार करते हैं।। 31।। जहाँ-योगीचन्द्र (साधु), जिनालय तथा धर्मात्माओं से पुर, पत्तन, खेट, ग्राम, गिरि तथा भवनादि शोभायमान हैं।। 32।। जिस देश में उत्पन्न हुए कितने ही बुद्धिमान पुरुष तो तपश्चरण द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं, कितने ही सर्वार्थ सिद्धि का तथा कितने ही ग्रैवेयकादि का साधन करते हैं।। 33।। कितने ही विलक्षण पुरुष सर्वज्ञ भगवान की परिचर्या के द्वारा सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं, कितने ही इन्द्र पद को प्राप्त होते हैं तथा कितने ही दान के फल से भोग भूमि में जाते हैं।। 34।। जिस देश में सम्पूर्ण अभ्युदय का हेतु भूत श्रीजिनभगवान द्वारा कहा हुआ धर्म श्रावक, मुनि तथा सुचतुर पुरुषों के द्वारा चलता है।। 35।। उसी धर्म के द्वारा अवन्ती निवासी भव्यपुरुष निरंतर पद-पद में सुख, उत्तम-उत्तम वस्तु तथा सम्पत्ति को प्राप्त होते हैं।। 36।। जिस देश में धर्मात्मा पुरुष अपने अनुकूल आचरण तथा गुणों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तक का साधन करते हैं, तो उस देश में अन्य सामान्य विषय के साधन की हम कहाँ तक कहें ?।। 37।। उसी अवन्ती देश के बीच में नाभि के समान सुविशाल-विद्वानों, धर्मात्माओं, उन्नत उन्नत चैत्यालयों तथा महोत्सवों से मनोहर उज्जयिनी नाम की नगरी है।। 38।। वह बड़े-बड़े उन्नत गोपुर, प्राकार, खातिका तथा सुभटों से युक्त होने से लोक में अयोध्या के समान शत्रुओं से उलङ्घनीय मालूम होती है।। 39।। जिस नगरी में श्रावक तथा श्राविकाओं से पूर्ण, जिन प्रतिमाओं से सुन्दर ऊँचे-ऊँचे जिन मन्दिर-वाद्य यंत्रों तथा धनवान लोगों से

शोभायमान हैं।। 40।। जिसमें धर्मात्मा पुरूष प्रातः काल ही शय्या से उठकर निरन्तर सामायिक स्तवन तथा ध्यानादि से उत्तम धर्म का सम्पादन करते रहते हैं।। 41।। और अपने गृह में तथा जिनालय में तीर्थंकर भगवान की पूजन करके मध्याह्न समय में पात्र-दान के लिये गृह द्वार पर साधुओं का समवलोकन करते रहते हैं।। 42।। तथा दिन भर में उत्पन्न हुये पाप कर्मों के विनाश के लिये और शुभकर्म की समुलब्धि के लिये शुद्धि पूर्वक सामायिक तथा महामन्त्र का सचिन्तवन करते हैं।। 43।। इसी प्रकार और-और शुभाचरण व्रत तथा शीलादि पालन तथा पर्व तिथि में उपवास पूजनादि के द्वारा पुरवासी लोग धर्म का सेवन करते हैं।। 44।। पश्चात् उसी के फल से उन्हें इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुख, भोगोपभोग सम्पत्ति, सुन्दर स्त्रियों तथा बालक अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होते हैं।। 45।। अहो! देवता लोग भी शिव सुख की सम्प्राप्ति के लिये जिस उज्जयिनी पुरी में अपने अवतार होने की इच्छा करते हैं, अथवा और कोई ऊँचे पद की प्राप्ति के लिये भी जन्म लें तो उस पुरी का इससे अधिक और क्या उत्तम कीर्तन होगा?।। 46।। इत्यादि वर्णन से उपलक्षित उज्जयिनी पुरी में परम प्रतापी, धर्मबुद्धि तथा धर्मात्माओं से अत्यन्त अनुराग करने वाले अवनिपाल नाम का राजा राज्य करता था।। 47।। और उसी नगरी में सरल हृदय धनपाल नाम का एक वैश्य रहता था। तथा शुभ लक्षणों से विराजित प्रभावती नाम की उसकी भार्या थी।। 48।। उन दोनों के परस्पर में अत्यन्त प्रेम करने वाले तथा गुण और सुन्दर-सुन्दर लक्षणों से युक्त, समान स्वभाव वाले देवदत्त प्रभृति सात पुत्र हुये।। 49।। उनमें कितने बालक तो अक्षराभ्यास करने लगे और बाकी के बड़े पुत्र धन सम्पादन के लिये व्यापार करने लगे।। 50।।

पश्चात् किसी दिन प्रभावती अन्तिम चतुर्थ स्नान करके अपने प्राणनाथ के साथ-साथ शय्या में सोई हुई थी, तभी उसने शुभोदय से रात्रि के पिछले प्रहर में अपने गृहद्वार में प्रवेश करते हुये उन्नत वृषभ, कल्पतरू तथा कान्तिशाली चन्द्रादि शुभ ग्रहों को स्वप्न में देखा। उसे स्वप्न देखने से बहुत आनन्द हुआ।

प्रातःकाल होते ही शय्या से उठी और सब धार्मिक क्रियायें करके स्वामी के पास गई और अपनी मधुर वाणी से पुत्र के अभ्युदय सूचक देखे हुये शुभ स्वप्नों को प्रस्तुत किया।

स्वप्न के सुनने से धनपाल को भी बहुत सन्तोष हुआ। तदुपरान्त वह कहने लगा कि प्रिये! इन शुभ स्वप्नों के फल से तो मालूम होता है कि तुम्हें दानी, ऐश्वर्य का उपभोग करने वाला, उत्तम वैश्यकुल रूप गगन मण्डल में गमन करने वाला सूर्य तथा अपने सुन्दर-सुन्दर गुण और उज्ज्वल सुयश के द्वारा त्रिभुवन को धवलित करने वाले महान पुत्र-रत्न की समुपलब्धि होगी। प्राणनाथ के वचनों से प्रभावती को ठीक वैसा ही आनन्द हुआ जैसा कि विशिष्ट पुत्र की सम्प्राप्ति से होता है। इसके बाद फिर गर्भ के भी शुभ चिह्न प्रकट दिखाई देने लगे और क्रम से जब नव महीने पूर्ण हुये तब पुण्य कर्म के उदय से प्रभावती ने उत्तम दिन, तिथि, नक्षत्र, योग, लग्न तथा शुभ मुहूर्त की आदि में सुख पूर्वक-सुन्दरकान्ति के धारक, तेजस्वी, शुभलक्षण-मण्डित शरीर के धारक, सुभग तथा मनोहर रूप से राजित उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न किया। पुत्र वास्तव में पुण्यशाली था, जब उसकी नाल गाढ़ने के लिये पृथ्वी खोदी गई तब धन से भरी हुई बड़ी भारी कढ़ाई निकली तथा इसी तरह जब उसके मज्जन के लिये भी खोदा गया तब भी पृथ्वी के भीतर से धन का भरा हुआ दूसरा भाजन (कलश) निकला। धनपाल इस आश्चर्य को देखकर उसी समय राजा के पास गया और कहने लगा कि विभो! मुझे उत्तम पुत्र की प्राप्ति हुई है और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है। धनपाल के वचन सुनकर महाराज अवनिपाल बोले-श्रेष्ठिन! जिस पुत्र के पुण्य से वह धन निकला है, उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसी के धन की अभिलाषा नहीं है। महाराज अवनिपाल की इस प्रकार की निस्पृहता से धनपाल को बहुत सन्तोष हुआ। बाद में वहाँ से गृह पर आकर सोध के (शुद्धि के साथ) बाद जिनालय में महाविभूति पूर्वक समस्त कल्याण कर्म की कारण भूत, विघ्नों के नाश करने वाली, जिन भगवान की महापूजा की।

नाना प्रकार के दानादि से अपने कुटुम्बीजनों को तथा याचक लोगों को सन्तोषित किया और बन्धुओं के साथ-साथ गीत, नृत्य, वादित्र, ध्वजा, तोरणमाला प्रभृति महोत्सव पूर्वक पुत्र के उत्पन्न होने का उत्सव किया।। 51।। 60।। और फिर दसवें दिन बहुत धन खर्च कर सर्व जिनचैत्यालयों में जिनेन्द्र की पूजन की तथा बन्धु लोगों को और याचक लोगों को उनकी इच्छानुसार सन्तोषित किया।

बन्धु लोगों ने विचार किया कि- अहो! इसी कुल दीपक उत्तम पुत्र के उत्पन्न होने का ही तो यह फल है, जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुये हैं। इसी विचार से उन्होंने पुत्र का भी शुभ नाम धन्यकुमार ही रख दिया। पश्चात्-सुन्दर स्वरूपशाली, लोगों के लोचनों का प्रेम भाजन तथा अपने योग्य अलंकारों से अलंकृत धन्यकुमार भी माता पितादि बन्धुओं को दुग्धपानादि सुमधुर मधुर चेष्टाओं से आनन्द देने लगा तथा बुद्धि, शरीर सौन्दर्यतादि से दिनों दिन कुमुदबान्धव (चन्द्रमा) के समान बढ़ने लगा। और धीरे-धीरे मुग्धावस्था को उल्लंघन कर कुमार अवस्था में आया और मनोहर गुणों के द्वारा देवकुमार के समान बढ़ने लगा।

उस समय धनपाल ने परमार्थ-भूत देव, शास्त्र तथा साधुओं की भक्ति पूर्वक परिचर्या कर विद्या, कला, विज्ञान प्रभृति गुणों की सुमपलब्धि के लिये धन्यकुमार को उपाध्याय के पास महोत्सव पूर्वक पढ़ने को बैठाया। बुद्धिमान धन्यकुमार भी थोड़े ही समय में उत्तम बुद्धि रूपी नौका के द्वारा शास्त्र-नीरधि के पार हो गया। पश्चात् धीरे-धीरे युवावस्था में अनेक शास्त्रों का अनुभवी, ज्ञान तथा कला कौशल का जानने वाला, विचारशील, उत्तम गुणों का आश्रय, बुद्धिमान, सुयश से उक्त वसुन्धरा वलय में प्रसिद्ध, शुभ लक्षणादि से शोभित, सुन्दर शरीर का धारक, रूप लावण्य भूषण-वसन और पुष्पमालादि से विराजित होकर ऐसा शोभने लगा जैसा कामदेव श्री के द्वारा शोभता है। धन्यकुमार इस अवस्था में भी प्रमादी न होकर निरन्तर धर्म सम्पादन के लिये प्रचुर मन लगाकर

देव, शास्त्र गुरु, सिद्धान्त की परिचर्या किया करता था और शुभ भावों से अपनी इच्छानुसार दीन अनाथ लोगों के लिये दया बुद्धि से दानादि दिया करता था। इसी तरह सम्पदा का उपभोग पूर्वक कुमार अवस्था के योग्य सुखजनक भोगों का अनुभव करते-करते बहुत दिन बीते। निरन्तर इसी प्रकार लक्ष्मी के व्यय करने की उसकी उदारता को उसके भाई लोग सहन नहीं कर सके। सो किसी दिन उन दुर्बुद्धियों ने अपनी माता से कहा - देखो! हम सब तो धन कमाते हैं और उसको खाने वाला यह केवल धन्यकुमार है, जो कभी कुछ व्यापार नहीं करता है।

प्रभावती ने पुत्रों की सम्पूर्ण शिकायत युक्त वार्ता अपने स्वामी से कह सुनाई और साथ में कहा कि - देखो! धन्यकुमार सब तरह का सौभाग्य सम्पन्न हो गया है, उसे आप व्यापार में क्यों नहीं लगाते? व्यापार के न करने से ही बड़े भाई उससे द्वेष करते रहते हैं। अपनी कान्ता के वचनानुसार धनपाल भी शुभ मूहुर्त में सुपुत्र धन्यकुमार को किसी तरह बाजार में ले गया और उसे सौ दीनारें देकर बोला - प्यारे पुत्र! ये द्रव्य ले लो। और इसके द्वारा यदि कोई किसी वस्तु को बेचने के लिये लाये तो तुम उसे खरीद लेना तथा उससे भी किन्हीं और वस्तुओं को अच्छी तरह देखकर खरीदना। सो इसी तरह जब तक भोजन का समय न आ जाये, तब तक व्यापार करते रहना, फिर अन्त में जो वस्तु खरीदी हो उसे नौकर के हाथ से उठवा कर भोजन करने के लिये घर पर आ जाना। इस प्रकार समझाकर धनपाल तो घर चला गया। और सरल हृदय तथा सौन्दर्यशाली धन्यकुमार नौकर के साथ-साथ वहीं पर ठहरा। इतने में कोई पुरुष लकड़ी की भरी हुई एक उत्तम गाड़ी बेचने के लिए वहीं पर लाया। धन्यकुमार ने पिता द्वारा दिया हुआ धन उसे देकर उससे वह गाड़ी खरीद ली। और फिर गाड़ी के द्वारा अपनी इच्छानुसार एक मैंढा मोल ले लिया। मैंढे को भी किसी दूसरे को देकर उससे एक खाट के अधजले चार पाये खरीद लिये। बाद में अपने घर पर आ गया। उस समय धन्यकुमार की माता बहुत-आनन्दित हुई और कहने लगी कि-

अहो! आज पहले ही दिन मेरे पुत्र व्यापार करके आया है। इसलिए उत्सव करना चाहिए।

उधर वे सातों पुत्र यह देखकर कहने लगे कि- देखो! यह कितने आश्चर्य की बात है, आज ही तो पिताजी ने व्यापार करने के लिए सौ दीनारें दी थीं और पहले ही दिन उन्हें खोकर चला आया तो भी हमारी माता उत्सव कर रही हैं, और हम लोग बहुत भी धन कमाकर लाते हैं फिर भी हमारे सामने तक न देखकर उल्टी उदासीन रहती हैं। अस्तु! इसमें इसका क्या दोष ? किन्तु दोष है हमारे पूर्वोपार्जित कर्मों का। पुत्रों के वचनों को सुनकर प्रभावती ने उन्हें अपने हृदय में रख लिया और फिर सब पुत्रों के पहले ही धन्यकुमार को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन कर लिया। पश्चात्- एक भारी काष्ठ के भाजन में जल भरकर प्रीतिपूर्वक अपने ही हाथ से खाट के पायों को धोने लगी। धोने के साथ ही पायों का कुछ भाग टूट कर जा गिरा। और शेष भाग से कुमार के प्रचुर पुण्योदय से दैदीप्यमान अनेक रत्न गिरने लगे और उसी में एक व्यवस्था पत्र (प्रशस्ति-पत्र) भी निकला। तो कदाचित् कोई कहे कि- ये खाट के पाये किसके हैं? यह पत्र किसने लिखा? तथा इसमें पत्र कैसे आया? इन सब प्रश्नों का उत्तर नीचे लिखा जाता है।

पहले इसी नगरी में पुण्यशाली तथा महाधनी वसुमित्र नाम का एक राजश्रेष्ठि हो गया है। जिसके प्रचुर शुभोदय (पुण्योदय) से उसके यहाँ समस्त भोगोपभोग सम्पदा की देने वाली नवनिधियाँ पैदा हुई थीं। एक दिन वसुमित्र ने उपवन में आये हुए किन्हीं अवधिज्ञानी मुनिराज से जाकर पूछा - विभो! आगे ऐसा कौन पुण्यात्मा नर रत्न उत्पन्न होने वाला है जो मेरी इन नवनिधियों का स्वामी होगा? मुनिराज ने - अवधिज्ञान के बल से कहा "महाराज अवनिपाल के उत्तम राजधानी में धनपाल वैश्य का धन्यकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न होने वाला है सो वही पूर्वोपार्जित पुण्योदय से इन निधियों का स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगों को बहुत सुख सम्पत्ति प्राप्त होगी।" मुनिराज के वचनों को सुनकर

वसुमित्र अपने घर गया और फिर मुनिराज के कथनानुसार यों व्यवस्था पत्र लिखा- "श्रीमान् महामण्लेश्वर महाराज अवनिपाल के सुराज्य में वैश्य कुल का उत्तम भूषण, धनी, भोगी तथा पुण्यशाली जो धन्यकुमार होने वाला है, वही धन्यात्मा मेरे गृह में इस स्थान से नवनिधियों को स्वीकार कर सुखपूर्वक यहीं पर रहे।"

इस प्रकार पत्र लिखकर पत्र को उत्तम-उत्तम रत्नों के साथ-साथ खाट के पायों में बन्द कर सुख पूर्वक रहने लगा। कुछ समय पश्चात् राजश्रेष्ठि वसुमित्र का स्वर्गवास हो गया तथा बाद में बेचारे घर के शेष लोग भी अशुभ कर्मोदय से मरकर कितने ही नरक में, कितने अपने-अपने कर्मों के अनुसार अन्य गतियों में गये। इनमें से जो सबके पीछे मरा था उसे जलाने के लिये खाट सहित शमशान भूमि में ले गये। उन्हीं खाट के पायों को शुभोदय से धन्यकुमार ने चाण्डाल के हाथ से खरीदा। ग्रन्थकार कहते हैं- अहो! शुभकर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो नहीं प्राप्त होने वाली, अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूर की तथा बहुत धन के द्वारा मिलने वाली वस्तु को स्वयं मिला देता है।

धन्यकुमार को पत्र को वांचने से बहुत खुशी हुई। वह उसमें जैसा लिखा था, उसी अनुसार निधियों के स्थानादि को ठीक-ठीक समझकर राजा के पास गया और उनसे युक्तिपूर्वक गृह के लिये अभ्यर्थना की। तथा अपने शुभोदय से आज्ञा मिल जाने पर घर के भीतर गया और वहाँ निधियों का देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ।।122।।123।।

बाद में उन उत्कृष्ट निधियों को अपने अधिकार में करके उनके द्वारा होने वाले अपरिमित धन का व्यवहार, मनोभिलषित फल के देने वाली देव, गुरू तथा शास्त्र की महापूजा में, सत्पात्रों के लिए पुण्य सम्पादन के कारण दान के देने में, दीन तथा अनाथों के लिए उनकी इच्छा के अनुसार दया दान करके अपनी प्रचुर विभूति से जिन धर्मियों का उपकार करने लगा। इसी तरह धन्यकुमार थोड़े दिनों में राजमान्य होकर त्रिभुवन विस्तृत सुयश के द्वारा उत्पन्न

होने वाले नाना प्रकार के भोगों को भोगने लगा। धन्यकुमार अपने कुटुम्बीजनों तथा और-और लोगों को भी बहुत प्रिय था। वह अपने शुभ आचरण से धर्म सेवन करता हुआ सुखरूप पीयूष समुद्र में निमग्न होकर कौतुक से बीते हुये समय को न जानकर सुख पूर्वक रहने लगा।।124।।128।।

अहो! धन्यकुमार अपने पूर्वोपर्जित पुण्य-कर्म के उदय से सर्वत्र आश्चर्य जनक भोग तथा सुख के सम्पादन करने वाली उत्तम सम्पत्ति नवनिधियों को प्राप्त होकर मनुष्य तथा राजादि से मान्य सुख का सदैव उपभोग करता है। ऐसा समझकर जो पुरुष सुख के अभिलाषी हैं उन्हें चाहिए कि वे सदैव अपने पवित्र आचरणों से केवल एक पुण्य का उपार्जन करें।। 129।। क्योंकि यही पुण्य-पुण्य तथा गुणों का आलय है, पाप का नाश करने वाला है, पुण्य का बुद्धिमान लोग आश्रय करते हैं, पुण्य से समस्त सुख प्राप्त होते हैं, पुण्य की प्राप्ति के लिए ही पुण्य क्रियाऐं की जाती हैं, पुण्य से त्रिभुवन में होने वाली लक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्य के सम्पादन करने का बीज व्रत धारण करना है इसलिए हे बुद्धिमानों! सुख की समुपलब्धि के लिये निरन्तर पुण्य के उपार्जन करने में चित्त लगाओ।।130।।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार का जन्म तथा निधियों के लाभ का वर्णन करने वाला पहला अधिकार समाप्त हुआ।। 1।।

द्वितीय अधिकार

जो धर्म के आदि प्रवर्तक हैं, जिन्हें त्रैलोक्यवर्ती समस्त लोग नमस्कार करते हैं, सारे वसुन्धरा मण्डल में जो उत्तम गिने जाते हैं, सज्जन पुरुषों के आश्रयाधार तथा अखिल संसार के जीवों का कल्याण करने वाले हैं उन श्री जिनेन्द्र भगवान को मैं स्तवन करता हूँ।

एक दिन उज्जयिनी का ही रहने वाला कोई बुद्धिमान पुरुष धन्यकुमार का कांतिशाली सुन्दर रूप देखकर उसके पिता से बोला - धनपाल! रति के समान सुन्दर मेरी एक बाला है। मेरी इच्छा है कि मैं उसे धन्यकुमार के लिए विवाह दूँ, जिससे वह अपनी इच्छानुसार सुखोपभोग कर सके। उसके उत्तर में धनपाल ने कहा मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। आपको चाहिए कि हमसे भी जो ऐश्वर्यादि में बड़े हैं उनके लिये अपनी कन्या का संकल्प करें। उसने कहा आपने कहा सो ठीक है परन्तु मेरी यह इच्छा नहीं कि मैं उसे दूसरे के लिये दूँ इसलिए मैनें तो अपने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस किसी समय दूँगा तो धन्यकुमार को ही दूँगा। इसी तरह और भी कितने ही बड़े-बड़े धनिक लोग कहने लगे कि हम भी अपनी कन्या का परिणय-संस्कार धन्यकुमार के साथ ही करेंगे, औरों के साथ नहीं। इस प्रकार दिनों-दिन बढ़ते हुये पुण्यशाली धन्यकुमार का अभ्युदय उसके बड़े भाईयों को सहन नहीं हुआ, सो वे उसके साथ ईर्ष्या करने लगे और साथ ही उसकी जीवन यात्रा का नाम शेष करने के लिये संकल्प किया।

उधर बेचारे धन्यकुमार को शुभकामों की ओर से बिल्कुल अवकाश नहीं मिलता था सो उसे यह कैसे मालूम हो सकता था कि मेरे ऊपर भाईयों के क्या-क्या षडयंत्र रचे जा रहे हैं? भावार्थ- भाईयों के दुष्ट अभिप्रायों को वह न जान सका। सो किसी दिन वे पापी लोग कुछ विचार कर उपवन की वापिकाओं में जल क्रीड़ा के लिये धन्यकुमार को साथ ले गये। बेचारा सरल हृदय

धन्यकुमार वापिका के किनारे पर बैठकर प्रीतिपूर्वक उन लोगों की जल लीला देखने लगा। इतने में उसके भाईयों में से एक कुटिल परिणामी पापी ने पीछे से आकर गला दबाकर उस विशुद्ध बुद्धि वाले (धन्यकुमार) को वापिका में उलट दिया। धन्यकुमार पाप के उदय से वापिका के गहरे जल में गिरा तो परन्तु गिरते-गिरते भी उसे महामंत्र का स्मरण हो आया। उन पापात्माओं को इतने पर भी जब सन्तोष न हुआ तब ऊपर से और भी निर्दयता पूर्वक उसके किसी प्रकार न जीने की इच्छा से पत्थर फेंकने लगे। पश्चात् यह समझकर कि अब वह नियम से अपने जीवन का भाग पूरा कर चुका होगा सो इसी विश्वास से किसी प्रकार सन्तोष मानकर घर की ओर लौट गये। ग्रन्थकार कहते हैं कि-

"संसार में ऐसा कौन सा बुरा काम है जिसे पापी लोग नहीं करते हों, किन्तु पापी लोग बुरे से बुरा काम भी नियम से करते हैं।"

उधर धन्यकुमार के बड़े भारी पुण्योदय से अथवा यों कहो कि महामंत्र की शक्ति से उसी समय जल देवता ने आकर उस धर्मात्मा धन्यकुमार को जल से निकलने के द्वार से धीरे-धीरे बाहर निकाल दिया। यह बात ठीक है कि जिन लोगों ने पहले पुण्य संचय कर रखा है उनके आधीन देवता स्वयं हो जाते हैं, और आये हुये उपद्रवों का नाश कर उपकार करते हैं। इसी महामंत्र का ध्यान करने से जो भी शुभ कार्य का बन्ध होता है, उससे दुष्टों के द्वारा किये हुये घोर उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार केसरी के द्वारा बेचारे बड़े-बड़े गजराज क्षणभर में नाम शेष हो गये। देखो! यह पुण्य का ही माहात्म्य है जो जलीय उपद्रव, स्थलीय उपद्रव, अग्नि उपद्रव, अकाल मृत्यु, तिर्यंचकृत उपसर्ग, चोर विभीषिका, राज विभीषिका, मनुष्य व देवों द्वारा दी गई यातना आदि विघ्नजाल बहुत जल्दी शान्त हो जाते हैं। इसी से तो कहते हैं कि जल, स्थल, दुर्ग, अटवी आदि जनित भयावस्था में तथा मृत्युकाल में भी केवल एक धर्म ही सहाई होता है। इसीलिये बुद्धिमानों को चाहिए कि आपत्ति के समय में वास्तविक बन्धु की तरह हित करने वाले तथा मरण प्रभृति उपाय के कारणों से रक्षा करने वाले धर्म

का निरन्तर सम्पादन करें।

इसके बाद पुण्यात्मा धन्यकुमार निर्विघ्न, बिना परिश्रम के जल से बाहर निकल कर अपने नगर की ओर चला और शहर के बाहर पहुँचकर विचारने लगा कि देखो! इस समय तो शुभोदय से मरते-मरते मैं किसी तरह बचा हूँ, यदि फिर भी उन लोगों का संग रहेगा तो नहीं मालूम क्या होगा? इसलिये मुझे घर पर जाना योग्य नहीं है। क्योंकि संसार में बाह्य शत्रुओं का भय बना रहता है, इसलिये वे छोड़े जा सकते हैं परन्तु घर का पुरुष यदि शत्रु हो जाये तो बहुत बुरा होता है। (फिर उसमें बन्धुता का भाव नहीं रहता और फिर उसका परिणाम भी यही होता है कि) जिस प्रकार कषायादि आभ्यन्तर शत्रु सहसा नहीं छोड़े जा सकते उसी तरह उन लोगों का सम्बन्ध छूटना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार अपने शुद्ध मन में विचार कर धन्यकुमार वहीं से दूसरे देश की ओर चल दिया। चलते-चलते उसने किसी खेत में एक किसान को हल हांकते हुये देखा और विचार किया कि देखो! मैंने अपनी लीला से कितनी कला कौशल विद्यायें सीखी हैं, परन्तु यह तो कोई अपूर्व ही विद्या मालूम पड़ती है। इनता विचार कर किसान के पास गया और आश्चर्य से उसकी ओर अवलोकन करता हुआ वहीं पर बैठ गया। वह कृषक नाना प्रकार के अलंकारों से विभूषित इसका रूपातिशय देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और धन्यकुमार से बोला। हे स्वामी! मैं कुटुम्बी हूँ कुछ शुद्ध दही भात लाया हूँ मुझ पर अनुग्रह पूर्वक आप भोजन करें। हे चतुर! भोजन करके मुझे और मेरी प्रार्थना को सफल करो। कृषी (कृषक) की प्रार्थना सुनकर धन्यकुमार ने उससे कहा- यह बात मुझे स्वीकार है। धन्यकुमार की स्वीकारता से सन्तोषित होकर कुटुम्बी उसे हल के पास बिठाकर आप पत्तों का पात्र बनाने के लिये पत्ते लेने के लिये गया। कृषी (कृषक) के चले जाने पर धन्यकुमार मुट्ठी से हल पकड़ कर अपनी इच्छानुसार सहर्ष कौतुक से बैलों को चलाने लगा। उस समय हल के अग्रभाग से पृथ्वी का विदारण होते ही उसे सुवर्ण से भरा हुआ तांबे का बड़ा भारी कलश दीख पड़ा।

उसे देखकर धन्यकुमार "हा! मेरे इस अपूर्व विज्ञानाभ्यास से पूरा पड़े। यदि कुटुम्बी (कृषक) यह प्रचुर धन देखेगा तो वह भी भाईयों के समान मेरे साथ वही बरताव करेगा"। इस प्रकार विचार करके द्रव्य के भय से डर कर धन्यकुमार कलश को उसी तरह रखकर और मिट्टी से उसे ढक कर बैठ गया। इतने में कृषक भी पत्ते लाया और खड्ड में रखे हुये निर्मल जल का भरा हुआ कलश तथा दही और भात निकालकर जल से धन्यकुमार के चरणकमल तथा पत्ते धोकर पत्तों के भाजन में भोजन करने के लिये उसे बिठाया।

धन्यकुमार ने कृषी (कृषक) की प्रार्थना के अनुसार भोजन किया और बाद में उससे राजगृह जाने का सुगम मार्ग पूछ कर उसी रास्ते से अपनी इच्छा के अनुसार चला गया। धन्यकुमार के जाने के बाद जब वह कृषक फिर हल चलाने लगा तब उसे वही धन दीख पड़ा। द्रव्य देखकर वह आश्चर्य के साथ विचारने लगा। अहो! उस पुण्यशाली के शुभोदय से यह द्रव्य निकला है इसलिये मेरे स्वीकार करने के योग्य नहीं है। यही कारण है कि जो मूर्ख लोग लोभ से दूसरों का धन ले लेते हैं, वे पाप के उदय से अपनी लक्ष्मी का भी साथ में नाश कर जन्म-जन्म में दरिद्री होते हैं। इस प्रकार विचार कर दूसरों के धन में निस्पृह कुटुम्बी वह धन धन्यकुमार को देने के लिये उसके पीछे-पीछे जल्दी जाने लगा। धन्यकुमार, दूर से बुलाने वाले कुटुम्बी (कृषक) को आता हुआ देखकर एक वृक्ष के नीचे सुख पूर्वक बैठ गया। इतने में कुटुम्बी धन्यकुमार के पास आकर तथा उसे नमस्कार करके बोला- हे नाथ! अपना धन छोड़कर इस तरह इच्छा रहित क्यों चले आये?। कुटुम्बी (कृषक) के वचन सुनकर धन्यकुमार बोला- भाई! मैं क्या द्रव्य साथ में लेकर यहाँ आया था? नहीं! किन्तु उल्टा तुम्हीं ने तो मुझे दही तथा भात का भोजन कराया है फिर यह धन मेरा कहाँ से हो गया? इसके उत्तर में अत्यन्त निर्लोभी और चतुर कुटुम्बी कहने लगा। कुमार! मेरे वचन सुनिये- पहले हमारे पितामह तथा पिता यह खेत अपने पुत्रों के साथ-साथ जोता करते थे तथा मैं भी हल चलाता था, परन्तु कभी धन नहीं निकला और तुम्हारे आने

पर आज शुभोदय से यह धन निकला है, इसलिए निश्चय से यह धन तुम्हारा है, क्योंकि हम सरीखे मन्द भाग्यों के लिये ऐसी सम्पत्ति कहाँ ?।

कुटुम्बी के इस प्रकार वचन सुनकर धन्यकुमार बोला अस्तु, यह मेरा ही धन रहे! मैंने तुम्हारे लिये दिया, तुम प्रयत्न पूर्वक पुण्योपार्जन तथा सुख के लिए इसका उपभोग करो। विभो! आपका मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह है। इस प्रकार धन्यकुमार से कहकर कुटुम्बी फिर उसे मस्तक से प्रणाम कर यों कहने लगे। हे नाथ! मैं कुटुम्बी ग्राम में रहता हूँ और मेरा नाम भी कुटुम्बी है। यदि किसी समय मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप शीघ्र ही मुझे सूचना करना, यों प्रार्थना करता हुआ पुनः नमस्कार करके चला गया। उधर धन्यकुमार भी रवाना हुआ सो उसे रास्ते में जाते वक्त पूर्वोपार्जित शुभोदय से मनोहर तथा निर्जन्तु किसी शुद्ध स्थान में बैठे हुए अवधिज्ञान से युक्त, निरन्तर धर्मोपदेश देने वाले, तीन जगत के जीवों का हित करने वाले और गुणों के समुद्र मुनिराज दिखाई पड़े। धन्यकुमार उनके दर्शन से हृदय में बहुत आनंदित होकर उनके समीप गया। मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दीं, और हाथ जोड़कर देवतार्च्य उनके चरणों की अभिवन्दना की, तथा धर्म प्राप्ति के लिये उनके पास हर्ष पूर्वक बैठ गया। मुनिराज भी उसे धर्मवृद्धि देकर उसकी शुभाशीर्वाद से प्रशंसा की और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे। कुमार! जिस धर्म के प्रभाव से पद-पद में तुम्हें खजाना मिलता है, बड़ा भारी लाभ होता है, सर्व जगह मान्यता होती है, जो इस लोक तथा परलोक में हित करने वाला है, स्वर्ग सुख तथा शिव सुख का आधार है, और जिनेश्वर, चक्रवर्ती तथा इन्द्रपद की सम्पत्ति का देने वाला है उसी धर्म का तुम्हें सेवन करना चाहिए। क्योंकि धर्म के फल से धर्मात्माओं को तीन जगत की लक्ष्मी जन्य सुख एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के ये चार पुरुषार्थ से उत्तम-उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस धर्म को जिन भगवान ने मुनि- धर्म तथा गृहस्थ- धर्म इस प्रकार दो भेद रूप कहा है। उसमें मुनिधर्म सम्पूर्णता से दयामय होता है, और गृहस्थ धर्म एक देश रूप दयामय है। वे धीर वीर मुनिराज

मुनिधर्म के द्वारा उसी पर्याय से अनन्त सुखशाली मोक्ष को प्राप्त होते हैं। अथवा सर्वार्थसिद्धि के सुख का उपभोग कर सर्वज्ञावस्था को प्राप्त होते हैं, अथवा बड़ा भारी चक्रवर्ती पद पाते हैं, अथवा चरम शरीरी होकर उत्तम-उत्तम तपश्चरण के द्वारा क्रम से मोक्ष चले जाते हैं। और गृहस्थ धर्म के द्वारा बुद्धिमान पुरुष सर्व ऋद्धियों के समूह का आश्रय भूत अच्युत स्वर्ग पर्यन्त स्वर्ग में अथवा सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय तथा सम्पत्ति के आकर अर्चनीय उत्तम कुल में अवतार जन्म लेते हैं, और वहाँ सुख भोग कर अनुक्रम से तपश्चरण द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष चले जाते हैं। हे चतुर! इन दोनों धर्मों का मूल कारण, चन्द्रमा की तरह निर्मल, निःशंकादि आठ गुणों से युक्त, शङ्कादि पच्चीस मल रहित, जिन भगवान तथा इन्द्रादि की सम्पत्ति का कारण, उत्तमोत्तम सुख का आकर, सम्यग्दृष्टि पुरुषों के साथ जाने वाले शुद्ध सम्यक्त्व को समझो। वीतराग भगवान को छोड़कर सुखोपभोग तथा मोक्ष के कारण त्रिभुवन अर्चनीय और कोई देव नहीं है, न हुये तथा न होंगे। जिन भगवान के कहे अहिंसा धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म सब ऋद्धि तथा सुख के कारण और सत्य नहीं है। समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ गुरू से बड़े सत्पुरुषों के सत्कार करने योग्य तथा स्वर्ग मोक्ष के मार्ग का उपदेश करने वाले और गुरु नहीं हैं। सर्वज्ञ भगवान के कहे हुये सात तत्त्वों से बढ़ कर सत्य तथा सम्यग्ज्ञान के कारण और तत्त्व इस संसार में नहीं हैं। उत्तम पात्रदान को छोड़कर भोग तथा सुख के देने वाला और दान नहीं है, तथा बारह प्रकार के तप को छोड़कर कर्मों के नाश करने वाला और तप नहीं हैं। इस प्रकार जिन भगवान के कथन में जो बुद्धिमान पुरुषों का निश्चय करना है तथा श्रद्धा और रुचि का रखना है, ये सब दर्शन रूप कल्पवृक्ष के बीज हैं। क्योंकि संसार में मनोभिलषित सुख का देने वाला, तीन जगत के स्वामियों की तथा जिन भगवान की सम्पत्ति का कारण यही सम्यक्त्व है। ऐसा समझ कर आठ गुण युक्त, चन्द्र की कान्ति समान शुद्ध तथा पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शन की शुद्धि तुम धारण करो। तथा जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुये देव पूजनादि छह

कर्म, धर्म की सम्प्राप्ति के लिए सदैव आचरण करो। जिन पूजन, गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये गृहस्थों के नित्य करने योग्य छह कर्म पुण्य के कारण हैं। भक्ति पूर्वक जिन मन्दिर तथा जिन प्रतिमा निर्माण कराकर अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम-उत्तम तथा मनोहर आठ प्रकार की पूजन द्रव्य से प्रति दिन जो जिन प्रतिमाओं की पूजा की जाती है उसे बुद्धिमान पुरुष सम्पूर्ण अभ्युदय की देने वाली "देवा पूजा" कहते हैं। यही कारण है कि जिन भगवान की पूजन से सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, विघ्न समूह तथा गृहारम्भ में होने वाले पाप का नाश होता है। जो गृहस्थ- उत्तम पात्र सद्गुरुओं की प्रतिदिन अज्ञान तथा मोह के नाश करने वाली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की देने वाली सेवा भक्ति सुश्रूषा तथा सदा आज्ञा का पालन अपने धर्म लाभ के लिये किया करते हैं उसे "गुरूपास्ति (गुरुसेवा)" कहते हैं। जो बुद्धिमान पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के लिये सिद्धान्त का अभ्यास करते हैं, वह तथा सामायिक, नमस्कार और ज्ञानाभ्यास आदि जितने पावन कर्म हैं, ये सब स्वाध्याय कहे जाते हैं। महर्षि लोग स्वाध्याय को त्रिलोकवर्ती पदार्थों के देखने के लिये प्रदीप कहते हैं, क्योंकि इस के द्वारा प्रचुर अज्ञानान्धकार का नाश होता है, तथा यह पञ्चेन्द्रिय रूप शत्रुओं का घातक है। यही हेतु है कि इसी ज्ञान से सत्पुरुष हेयोपादेय का, भले बुरे का, देव शास्त्र और गुरु की परीक्षा का, धर्म के स्वरूप का, मोक्ष मार्ग का, खोटे मार्ग का तथा झूठे, सच्चे धर्म का स्वरूप जानने लगते हैं, और जो आज्ञानी होते हैं वे जैसे जन्मान्ध पुरुष हाथी का ठीक-ठीक स्वरूप नहीं जान सकता वैसे ही वे कभी कुछ भी नहीं जान पाते हैं। इस प्रकार स्वाध्याय का फल समझकर बुद्धिमान पुरुषों को सिद्धान्तशास्त्र में प्रवेश के प्रतिबन्धक अज्ञान का नाश करने के लिये और ज्ञान की सम्प्राप्ति के लिये, शिवसुख का साधन, स्वाध्याय करना चाहिये। बारह प्रकार के उत्तम व्रतों के पालन करने को, पञ्चेन्द्रिय रूप शत्रुओं के वश करने को, तथा हृदय में प्राणियों की दया करने को गणधर भगवान संयम कहते हैं। यह संयम निरन्तर पुण्य की

सम्प्राप्ति करने वाला है और पापाश्रव का निरोधक है। अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन और व्रतादि में नियम पूर्वक उपवास करने को दूसरा कायक्लेश तप कहते हैं। बुद्धिमान पुरुष बारह प्रकार के व्रतों के द्वारा जो तप आचरण करते हैं वह सम्पूर्ण तप है, कर्मों के भस्म करने के लिये अग्नि के समान है। इसके द्वारा गृहस्थों के गृह सम्बन्धी आरम्भ से होने वाला पाप नाश होता है तथा गुणों के साथ ही साथ धर्म रूप कल्पवृक्ष वृद्धिगंत होता है। इस प्रकार समझ पर्व तिथि में बुद्धिमानों को उपवासादि पूर्वक निर्मल तप एवं संयम युक्त आचरण करना चाहिये और फिर उसे प्राणों के नाश होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये। प्रतिदिन दान देने के लिये अपने गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और उत्तम पात्र मिलने पर उन्हें दान देना चाहिये। क्योंकि दान सुख का आकर है, अपना तथा दूसरों का हित करने वाला है धर्म तथा सुख का देने वाला है, गृहारम्भ से होने वाले पाप का नाश करने वाला है, और भोग भूमि की विभूति को प्राप्त कराने वाला है। इन छह कर्मों के द्वारा गृहस्थों को निरन्तर उत्तम धर्म की प्राप्ति होती रहती है। तथा गृहारंभ से होने वाले पाप कर्म का नाश होता है। हे कुमार! इस प्रकार समझ कर तुम्हें स्वर्ग सुख के देने वाले पावन गृहस्थों के छह कर्म नित्य करने चाहिये क्योंकि इन्हीं के द्वारा परम्परा से मोक्ष सुख भी मिल सकेगा। और देखो! पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षावृत ये बारह व्रत भी गृहस्थ धर्म में पाले जाते हैं। गृहस्थ धर्म भी पाप का नाश करने वाला और स्वर्ग सुख का प्रधान कारण है। इसलिये कुमार! धर्म की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रावकों के उत्तम व्रत धारण करने चाहिये। तुम इनके द्वारा उत्तम सुख तथा परम्परा से मोक्ष भी प्राप्त कर सकोगे। सदैव सद्धर्म का सम्पादन करो और समीचिन धर्म का ही आश्रय लो, क्योंकि धर्म ही सर्व गुणों का खजाना है। धर्म के अनुसार उत्तम मार्ग पर चलो, उसकी प्रतिदिन अभिवन्दना करो, धर्म से तुम्हें सब वस्तुओं की अपने आप ही सिद्धि होगी, देखो! धर्म का मूल दया है उसे कभी मत भूलो, धर्म में सदा निश्चल चित्त रहो यही उत्तम धर्म तुम्हारी सदा रक्षा करेगा। तुम जानते हो

धर्म अनन्त सुख का समुद्र है और दुःख का नाश करने वाला है, बुद्धिमान लोग सदा धर्म का उपार्जन करते हैं, धर्म के द्वारा जल्दी ही सब गुण मिल जाते हैं, धर्म को मैं भी नमस्कार करता हूँ। धर्म को छोड़कर और कोई शिव सुख का देने वाला नहीं कहा जा सकता, धर्म का मूल क्षमा है, धर्म में अपने चित्त को एकाग्र करता हूँ, हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के विघ्नों की शान्ति तथा धर्म श्रवणनाम का दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ।। 2।।

तृतीय अधिकार

विश्वविघ्नहरावन्दे पञ्च सत्परमेष्ठिनः।

विश्वश्रीधर्मकर्तृं श्च विश्वबन्धून्गुणार्णवान्।।

धन्यकुमार मुनिराज के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने योग्य व्रत नियमादि श्रद्धा पूर्वक ग्रहण किये। बाद में मुनिराज को सभक्ति अभिवन्दना कर, हाथ जोड़ कर पूछा- नाथ! आप तीन जगत के जीवों का हित करने वाले हैं। आप से कुछ मुझे पूछना है। वह यह कि ऐसा क्या कारण है जिससे मेरे भाई लोग तो मुझसे द्वेष करते हैं ? और किस पुण्य से माता प्रेम करती है? तथा पद-पद में मुझे बहुत सम्पत्ति मिलती है। क्या आप कृपा कर ये सब बातें मुझे कहेंगे?

मुनिराज धन्यकुमार पर अनुग्रह कर उसके पूर्व जन्म की जीवनी सुनाने लगे- कुमार! जरा अपने चित्त को स्थिर करके सुनो, मैं तुम्हें पूर्व जन्म की कथा कहता हूँ। क्योंकि उससे तुम्हारे हृदय में संसार से भी भय उत्पन्न होगा, धर्म में अभिरुचि होगी, पाप से डरोगे और दान व्रत नियमादि में उत्तम विचार होंगे। तुम्हारी कथा से सर्व साधारण का भी उपकार हो सकेगा।

भारतवर्ष-मगध देश, उसके अन्तर्गत भोगावती नाम की नगरी थी। उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था। उसकी भार्या मृष्टदाना थी। उनके घर में सुकृतपुण्य नाम का नौकर था जब मृष्टदाना गर्भवती हुई तब ही उसके पापोदय से कामवृष्टि मर गया बाद में वह गर्भ जैसे-जैसे बढ़ने लगा तैसे-तैसे घर के सब लोग गर्भस्थ के प्रचण्ड पाप से धराशयी हुये। पुत्र का जन्म होते ही मृष्टदाना की माता ने भी परलोक यात्रा की। धन धान्यादि सब वस्तुएं नष्ट हो गई। साथ ही साथ पुण्य कर्म भी नष्ट हुआ। सच कहा है- जब अभागा कुपुत्र गर्भ में आता है तब कुटुम्ब, धन, सुख और पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं, और घर में दरिद्रता का

वास हो जाता है। पापी पुत्र का पैदा होना सर्वथा बुरा है। समझो! पुत्र, कलत्र आदि जितनी वस्तुएँ, जो दुःख की कारण होती हैं, वह सब पाप का फल है। इसलिये जो बुद्धिमान हैं, उन्हें अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण पाप, प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये। प्रत्युत सदा धर्म का उपार्जन करना उचित है। देखो! इस बालक ने पाप कर्म के सिवाय कभी पुण्य नहीं किया यही कारण है जो आज इसकी यह दारूण दशा हुई। यही समझ मृष्टदाना ने भी अपने पुत्र का नाम अकृतपुण्य रखा। सब धन तो पहले ही नष्ट हो चुका था। जब बिचारी मृष्टदाना का पेट भरना तक मुश्किल हो गया तब वह कुछ उपाय न देख लाचार होकर दूसरे के घर का पीसना पीस कर बहुत दुःख के साथ अभागे पुत्र का पालन पोषण करने लगी।

उधर कामवृष्टि के मर जाने के बाद पुण्योदय से उसका नौकर वही सुकृतपुण्य भोगावती का मालिक हो गया था। उस अवसर से धन्यकुमार ने अवधिज्ञानी मुनिराज को नमस्कार कर पूछा- भगवन्! इस बालक ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पाप कर्म किया है? और कैसे खोटे काम के किये हैं? जिससे आज इसे यह दशा देखनी पड़ी? मुनिराज उसकी कथा कहने लगे जिसके सुनने मात्र से बुरे कामों के करने में भय होता है। इसी देश में भूतिलक नाम का सुन्दर नगर था। उस में महाधनी धनपति नाम वैश्य रहता था, धनपति बुद्धिमान, महादानी, व्रती और सदा शुभ कर्म करने वाला था। एक दिन उसने अपने निर्मल चित्त में विचारा कि लक्ष्मी पुण्य के उदय से होती है। मेरी समझ में उसका फल केवल पात्रदान होना चाहिये। परन्तु जो उत्तम पात्र हैं, वे तो केवल आहार को छोड़कर और कुछ भी कभी नहीं लेते हैं, और न निर्ग्रन्थ साधुओं को वस्त्र, धनादि दिये ही जा सकते हैं क्योंकि उनसे उनकी निर्ग्रन्थता में बाधा आती है। इसलिये यदि बड़े-बड़े ऊँचे जिनालय बनवाये जायें, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमायें बनवाई जायें और उनकी प्रतिष्ठा करवाई जायें, तो अवश्य इन शुभ कर्मों के द्वारा लक्ष्मी सार्थक हो सकती है और कल्पलता की तरह इच्छित फल दे

सकती है। क्योंकि देखो! जिन मन्दिरों में कितने ही भव्य जीव जिन भगवान की पूजा से, कितने ही नमस्कार, स्तवन, दर्शन, गीत, नृत्य और वादित्र से, कितने ही अभिषेक से, कितने ही धर्मोपकरणादि के दान से, कितने उद्यापनादि से और कितने ही यात्रा करने से बड़े भारी पुण्य कर्म का उपार्जन करते हैं। उनमें योगिराज भी रहते हैं, उनके द्वारा धर्म की प्रवृति होती है और धर्म के द्वारा भव्य पुरुष स्वर्गादि सुख के अनुभोक्ता होते हैं, इत्यादि नाना तरह के अच्छे-अच्छे कर्मों से गृहस्थ लोग जिन मंदिरों में पुण्य सम्पादन किया करते हैं। इसलिये यदि यह कहा जाये कि धनी लोगों को लक्ष्मी का वास्तविक फल जिनमंदिर का निर्माण तथा उद्धार कराना छोड़कर और कुछ नहीं है, तो कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सहस्रों वर्ष पर्यन्त उनमें जिन प्रतिमायें पूजी जाया करेंगी। जो लोग प्रतिमायें बनवाते हैं उन्हें कितना पुण्य बन्ध होता होगा उसे कौन कह सकता है? इसलिये धनी लोगों को जिन प्रतिमायें बनवानी चाहिये। उनके द्वारा वे स्वर्ग तथा शिव सुख भोगने वाले हो सकेंगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो लोग जिन बिम्ब प्रतिष्ठा करवाते हैं, उनके कितना पुण्य कर्म बन्ध होता है उसकी संख्या मैं नहीं जानता क्योंकि जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के द्वारा महान धर्म की वृद्धि होती है। यही हेतु है कि प्रतिमा बनवाने वाले बहुत पुण्य कमाते हैं। कितने मिथ्यादृष्टि तो जिन प्रतिमा बनवाकर, तथा उनकी प्राण प्रतिष्ठा करवा कर ही जैनी होते हैं, और तरह नहीं। तात्पर्य यह कि जिनप्रतिमा और जिनप्रतिष्ठा पुण्य की कारण हैं इसलिये धनिक लोग जिनालय क्यों न बनवायें? इसी विचार से धनपति सेठ ने बड़ा विशाल सुन्दर जिनालय निर्माण करवाया और सुवर्ण रत्नमयी जिन प्रतिमायें बनवाई। चारों प्रकार के संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) को बुलवा कर उन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा विधि के अनुसार बहुत धन लगाकर प्रतिष्ठा करवाई और जिनालय में देने के लिये सुवर्ण और रत्नमयी श्रृंगार, कलश प्रभृति धर्मोपकरण बनवाये। उन रत्नमयी प्रतिमाओं की प्रसिद्धि सब जगह फैल गई। उसे सुनकर किसी दुर्व्यसनी चोर ने लोभ में आकर विचारा

कि उस जिनालय की रक्षा के लिये बहुत रक्षक नियत हैं सो बिना साधु वेष धारण किये किसी तरह उसके भीतर नहीं जा सकूंगा। इस प्रकार विचार कर वह मायावी लोभ के वश हो ब्रह्मचारी बन गया। कपटभाव से कायक्लेशादि तपश्चरण करने लगा और भोले लोगों में अपने गुणों की प्रशंसा करने लगा। ऐसे ही देश-विदेशों में घूमता हुआ भूतिलक पुर में आ पहँचा। जब लोगों के मुख से ब्रह्मचारी की धनपति ने प्रशंसा सुनी तो वह उसी वक्त उसके पास गया और नमस्कार कर, भक्तिपूर्वक उसे अपने मन्दिर में लिवा लाया। कृटिलात्मा ब्रह्मचारी भी झूठे तपश्चरण से लोगों को अनुरक्त करके बगुले की तरह जिनालय में रहने लगा।

किसी दिन धनपति ने उस पापी ब्रह्मचारी से कहा महाराज! मुझे व्यापारार्थ दूसरे देश जाना है, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जब तक मैं वापिस न लौटूं, आप जिनालय की रक्षा करना। ब्रह्मचारी ने यह कहकर टाल दिया कि हम यहाँ नहीं रहेंगे (सच है कि जो लोग अन्तरङ्ग के काले होते हैं उनकी भीतरी बातें कौन जान सकता है?) ठीक यही हालत सरल स्वभावी धनपति की हुई, वह ब्रह्मचारी के अन्दर (दिल) की बात न जानकर उसके इन्कार करने पर और भी आग्रह करने लगा और किसी तरह उन्हें रक्षा का भार सौंपकर आप चला गया। इधर मायावी ब्रह्मचारी का दांव लग गया, सो व्यसनों के द्वारा जिनालय के सब उपकरणों को तीन तेरह कर दिया, अर्थात् बेच बेच कर खा लिया। परन्तु यह पाप कब तक छिप सकता था? सो ब्रह्मचारी के सारे शरीर से कोढ़ फूट निकला, सारा शरीर दुर्गन्धमय हो गया, उसके द्वारा बड़ा ही दुःख होने लगा। सच कहा है कि "अधिक पाप का अथवा अधिक पुण्य का फल प्रायः उसी वक्त उदय हो आता है।" पाप का फल बहुत बुरा होता है और पुण्य का फल बहुत अच्छा होता है। पापियों को इसी भव में नाना तरह के रोगादि तथा परलोक में नरक दुःख भोगने पड़ते हैं और पुण्यात्माओं की सब प्रशंसा करते हैं, बड़ी ही प्रतिष्ठा होती है, जगत में यश फैलता है और परभव में भी उत्तम गति मिलती है। जो

लोग सच्चे देव, गुरु और शास्त्र की पूजन करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं और जो पापी लोग निर्माल्य के खाने वाले हैं वे नरक में जाते हैं। उनके वंश का सर्वनाश हो जाता है, धन चला जाता है, नाना तरह के दारूण दुख एवं असाध्य रोग भोगने पड़ते हैं। इतने पर भी छुटकारा न होकर अन्त में उनके लिये नरक का द्वार तैयार रहता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि हलाहल विष खा लेना बहुत ही अच्छा है, फिर चाहे उससे उसी वक्त भले ही प्राण चले जायें परन्तु निर्माल्य खाना अच्छा नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा (निर्माल्य सेवन से) अनन्त भव बिगड़ जाते हैं। इस बात को ध्यान मं रखकर बुद्धिमानों को कभी देव, गुरु, शास्त्र का निर्माल्य नहीं लेना चाहिये। किन्तु जैसे विष का उपयोग बुरा है उसी तरह निर्माल्य भी बुरा समझकर छोड़ देना चाहिये। यदि निर्माल्य अमृत भी क्यों न हो, फिर भी उसे दूर से ही छोड़ देना चाहिये।

ब्रह्मचारी उस भीषण अवस्था में भी वहीं रहा करता था। इस वक्त उसकी और भी दशा बिगड़ गई थी। उसके सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोढ़ के मारे गले जा रहे थे। देखने में बड़ी घृणा पैदा होती थी, आकृति भयानक हो गयी थी, हर वक्त रौद्र भाव बने रहते थे। संक्षेप में यह कहें कि वह तीव्रतर दुःख रूपी समुद्र में डूबा हुआ था। इतने में धनपति भी निर्विघ्न विदेश यात्रा से लौट आया। उसके देखते ही ब्रह्मचारी को बड़ा क्रोध आया। उसके मुँह से यही आह निकली कि "यह मरा भी नहीं जो वापस चला आया?" इतना कहकर सेठ के ऊपर दारूण रौद्र ध्यान करने से उसकी वेदना और भी बढ़ गई और इसी दशा में बड़े ही कष्ट से मर गया। मर कर निर्माल्य भक्षण के पाप से सातवें नरक में गया। वहाँ अत्यन्त दुर्गन्धित उपपाद प्रदेश में ऊपर पांव तथा नीचे मुख होकर उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मात्र में हुण्डक संस्थान तथा कुत्सित शरीर धारण कर पृथ्वी पर गिरा, गिरते ही पृथ्वी के आघात से पांच सौ योजन उछला और नीचे गिरा। शरीर के खण्ड-खण्ड हो गये। जैसे वृक्ष से गिरकर पत्ता वायु वेग से पृथ्वी पर लोटा करता (लुढ़कता-पड़ता) है, ठीक वही हालत इसकी नरक में थी। नरक

बड़ा ही भयानक होता है, उस में से दुर्गन्ध का अन्त नहीं, वहाँ की भूमि के स्पर्शन करने मात्र से एक साथ हजार बिच्छुओं के काटे जाने के बराबर दुःख होता है, वह नरक चारों ओर वन की तरह कांटो से संकीर्ण होता है। जब वह नारकी वहाँ देखता है तो इसे भयानक लाल-लाल नेत्र किये हुये और दारुण कर्म करने वाले नारकी लोग दीख पड़े और ठीक ऐसे ही सब दुखों की स्थान, अस्पर्शनीय, अति भयानक, नरकों की भूमि दीख पड़ी। तब यह विचारने लगा। मैं कौन हूँ? यहाँ क्या कर कहाँ से आया हूँ? यह स्थान इतना भीषण क्यों हैं? और यह भयंकर लोग कौन हैं? विचारते ही इसे विभंग अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके द्वारा अपने को भयंकर नरक में गिरा हुआ समझकर पूर्व जन्म के बुरे कर्मों को विचारने लगा। हा! पाँच इन्द्रियों के विषय में आसक्त होकर मुझ पापी ने सात व्यसन सेवन किये थे, अभक्ष्य मधु मांसादि खाये थे, स्वच्छन्द होकर मदिरापान किया था, चोरी और मायाचारादि के द्वारा दूसरों का धन लूटा था, दूसरों की स्त्रियों से बलात्कार किया था, जीवों की हिंसा की थी, झूठे और कडुवे वचन बोले थे, जिनालय के उपकरणादि का हरण किया था, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, दुर्लेश्या, बुरी चेष्ठा और दूसरों को दुःख देना आदि दुराचारों से निरन्तर पाप ही पाप उपार्जन किया, उसी महापाप से यहाँ यह दारुण दुःख भोगना पड़ा है। यह दुःख कितना दुरन्त और दुःसह है, जिसका संसार में कोई उपमान नहीं दिखता। पाप तो मैंने बहुत ही कमाया और पुण्य के कारणभूत न तो कुछ व्रत- नियमादि ही पालन किये, न नमस्कार मंत्र का ध्यान किया, न जिन पूजन की, न गुरुओं के चरणों की सेवा की, न इन्द्रियाँ वश में की, न उत्तम-उत्तम पात्रों को नवधा भक्ति से आहारादि चार प्रकार का दान किया, और न शुभ ध्यान ही किया अथवा थोड़े में यों कहो कि शुभ कर्मों के द्वारा धर्म का लेश भी सम्पादन नहीं किया, जो धर्म उत्तम गति के सुख का कारण और दुर्गति से रक्षा करने वाला है। यही कारण है कि मुझे प्रचुर और महा निंद्य दुःख रूपी समुद्र के बीच में जन्म लेना पड़ा है। हा! मैं पाप शत्रु के द्वारा पूर्ण रूप से जकड़ा

हुआ हूँ। मैं कहाँ जाऊँ और किससे जाकर अपनी दुःखद् कहानी सुनाऊँ? इस समय पाप का बड़ा ही दारुण उदय होने से मुझे तो यहाँ कोई रक्षक भी नहीं दीख पड़ता। हा! इस घोर दुःख समुद्र से क्योंकर मैं पार हो सकूंगा? हा! दैव (कर्म) ने मेरे सिर पर बड़ी भारी यातना का पहाड़ गिरा दिया। यह तो इधर अपने प्राकृत कर्मों की प्रायश्चित वह्नि से भीतर-बाहर जल ही रहा था कि इतने में कितने ही नारकियों ने क्रोधित होकर इसके शरीर के मुद्गर आदि शस्त्रों से खण्ड-खण्ड कर दिये, कितने ही निर्दयी पापियों ने यह कह कर कि देख ये वही नेत्र हैं न? जिससे बुरी तरह दूसरे की ओर देखा था, झट से नेत्र उखाड़ लिये, कितने ही दुर्बुद्धियों ने हृदय में उत्पन्न हुये पाप विकार से उसके उदर को फाड़ कर सब आतें तोड़ डालीं, कितनों ने कृकच (करोंत) के द्वारा उसके शरीर को चीर डाला, कितने ही नारकी अधम शरीर के तिल बराबर खण्ड-खण्ड करके और अधिक दुःख देने लगे। नारकियों के शरीर के टुकड़े पारे की तरह मिल जाते हैं क्योंकि जब तक आयु की स्थिति का नाश न होगा जब तक उनकी मृत्यु न होकर ऐसी ही अवस्था होती रहेगी। बेचारे ब्रह्मचारी के जीव का एक ओर तो वेदना से छुटकारा हुआ ही नहीं था कि इतने में कितने ही नारकियों ने आकर और प्रचुर दुःख देने की इच्छा से वहाँ से उठा लाकर उसे अत्यन्त गर्म तेल की कढ़ाई में डाल दिया। सारा शरीर देखते-देखते जल गया। इसकी शांति के लिये वहाँ से निकलकर वैतरणी नदी के दुर्गन्धित जल में डुबकी लगाई परन्तु वहाँ भी उसे शांति न मिली। क्योंकि वह जल मांस और खून की तरह अत्यन्त ही ग्लानि कारक होता है सो उससे संताप और भी अधिक बढ़ गया। वहाँ भी जब देखा कि शांति नहीं है, तब इस इच्छा से कि वन में जरूर ही कुछ न कुछ आराम मिलेगा, वहाँ से चलकर वन में पहुँचा। और किसी वृक्ष के नीचे बैठना ही चाहता था कि इतने में प्रचण्ड वायु चलने से खड्ग की तरह तीक्ष्ण पत्ते ऊपर से गिरे। गिरते ही शरीर खण्ड-खण्ड हो गया। वहाँ से भी उसी दशा में दूसरे वन में गया, सो वहाँ वैक्रियक सिंह व्याघ्रादि हिंसक जीव उसे खाने लगे। उसी वक्त कितने

नारकी लोग और भी आकर उसे यह इशारा करके कि देख! तूने पहले तो बहुत सी परस्त्रियों का जीवन खराब किया था, आ और अब भी उस सुख का अनुभव कर, ऐसा कह कर बलात् जलती हुई लोहे की पुतली से आलिङ्गन करा देते थे। कितने संडासी के द्वारा उसके मुख को जबरदस्ती से चीर कर मद्य की तरह गर्म तांबा पिलाते थे। जितने दुःसह तथा सब दुःखों के कारणभूत रोग हैं, वे सब नारकियों के शरीर में स्वभाव से ही हो जाते हैं। उन्हें प्यास इतनी अधिक सताती है कि यदि सारा समुद्र पी जाये तब भी वह न मिटे इतने पर भी जल की एक बूंद तक नहीं मिलती। संसार के सम्पूर्ण अन्न से भी न मिटने वाली भूख सदा हृदय को जला देती है, परन्तु तिल मात्र तक अन्न खाने को नहीं मिलता। वहाँ शीत इतनी है कि एक लाख योजन प्रमाण लोह पिंड डालते ही पानी बन जाता है, और इतनी ही अधिक गर्मी रहती है। इस प्रकार नरक में परस्पर में दिये हुये, और मन वचन काय की बुरी वृत्ति से उपार्जन किये हुये महापाप के उदय से शीत उष्ण क्षुधा तृषादि की भीषण यातनाओं का उस ब्रह्मचारी के जीव ने निरन्तर अनुभव किया। वाणी में भी उतनी शक्ति नहीं है तो नारकीय पीड़ा का वर्णन कर सके। उस पापी ने तैंतीस सागर पर्यन्त वहाँ अनेक तरह के दुःख भोगे, जहाँ दुःख समुद्र में डूबे हुये नारकियों को निमिष मात्र ही सुख नहीं होता है। जब उसकी नरक स्थिति पूर्ण हुई तब वहाँ से निकल कर पापोदय से स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हुआ। वहाँ भी उसने बहुत दिनों तक जीवों के भक्षण से फिर भी सप्तम नरक का पाप उत्पन्न किया। सो आयु पूर्ण होते ही पुनः उसी नरक में गया जिसके दुःखों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। वहाँ पहले की तरह दुःखानुभव कर निकला और भव समुद्र में - सब दुःखों की कारण त्रस तथा स्थावर पर्यायों की अनेक योनियों के चिरकाल भ्रमण कर यही अकृत्पुण्य हुआ है। देखो! इस अकृत्पुण्य ने पूर्व जन्म में मायाचार के द्वारा जो पाप उपार्जन किया था उसी के भीषण फल से इसे दारुण नरक यातना भोगनी पड़ी है। यही विचार कर बुद्धिमानों को पाप कर्म से आत्मा की रक्षा करनी चाहिये- और व्रत

संयमादि ग्रहण करने चाहिये जिससे इस आत्मा को सुख मिल सके यही कहने का सार है।

धर्म और अधर्म के निरूपण करने वाले जिनेन्द्र, और उसके सम्पूर्ण फल को प्राप्त हुये निरुपम गुणों से युक्त सिद्ध भगवान, पावन धर्म का उपदेश देने वाले आचार्य और उपाध्याय तथा साधु ये सब मिलकर मुझे अपने-अपने गुणों को लाभ करावें। क्योंकि त्रिभुवन के राजा और महाराजा इन्हीं की स्तुति करते हैं, इसलिये ये ही स्तवन के पात्र हैं।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में अकृतपुण्य के भवान्तर का वर्णन करने वाला तृतीय अधिकार पूर्ण हुआ।। 3।।

चतुर्थ अधिकार

जिनान्धर्माधिपान्वन्दे सिद्धान्धर्मफलाङ्कितान्।
सूरींश्चपाठकान्साधून्धर्मान्धर्मप्रवर्त्तकान्।।

एक दिन दरिद्री और दीन अकृतपुण्य सुकृतपुण्य के चने के खेत पर चला गया और नौकर की तरह सुकृतपुण्य से बोला। सुकृतपुण्य! देखो ये और लोग जो चने उखाड़ रहे हैं मैं भी इनकी तरह यदि चने उखाडूं तो क्या मुझे कुछ दोगे? उसके कातर वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा- हा! इस संसार में मनुष्यों के कर्म की विचित्रता को देखो! जो कभी स्वामी होते हैं, वे तो नौकर हो जाते हैं और जो कभी-कभी नौकर होते हैं, वे स्वामी हो जाते हैं। हाय! इसके पिता के प्रसाद से मेरी यह दशा हुई जो कि मैं धनिक और गाँव का स्वामी हो गया और यह भी उसी का पुत्र है जिसकी आज यह दशा है! जो कर्मों का मारा हुआ मुझ से भी याचना कर रहा है। इस दुष्ट दैव को धिक्कार, जो समय मात्र में उल्टे का सीधा और सीधे का उल्टे कर देता है। अथवा यों कह दो कि पाप के उदय से धनी दरिद्री हो जाते हैं और पुण्य के उदय से निर्धन धनी हो जाते हैं। यही विचार कर जो निर्धन हैं, उन्हें तो धन लाभ के लिये पुण्य उपार्जन करना चाहिये और जो धनिक हैं उन्हें वैभव वृद्धि के लिये सब पाप कर्म छोड़ने चाहिये।

सुकृतपुण्य ने उसकी दीन दशा को देखकर उसी वक्त कितने धन के भरे हुये सुवर्ण के कलश अथवा रत्न उसे दिये। परन्तु अकृतपुण्य का पाप कर्म इतना प्रचण्ड था, कि हाथ में धरते (रखते) ही वे रत्न अंगार की तरह जलने लगे। उन्हें देखकर अकृतपुण्य बोला- क्यों भाई, सबके लिये तू चने दे रहा है और मेरे लिये ये अंगार! ऐसा क्यों? तब सुकृतपुण्य ने समझ लिया कि अभी इसके दारुण पाप का उदय है। क्या किया जाये? भाई! मेरे अंगार तू मुझे ही देदे

और जितने चने तू ले जा सकता है उतने गठरी बाँध कर खेत से ले जा। उसके कहने के अनुसार अकृतपुण्य जितने चने अपने से उठ सके, उतने सिर पर रखकर घर चला गया किन्तु रास्ते में सच्छिद्र वस्त्र से उसके चने गिरते गये, मात्र एक मुट्ठी चने शेष रह गये। उन चनों को देखकर उसकी माता ने कहा कि ये चने तू कहाँ से लाया है? उत्तर में अकृतपुण्य ने कहा, माता! मैं सुकृतपुण्य के खेत पर गया था वहीं से काम के बदले में चने लाया हूँ। सुनकर माता बहुत ही दुःखी हुई और कहने लगी। हाय! जो पहले मेरा नौकर था, आज पाप के उदय से मेरा पुत्र उसी का नौकर हुआ। जो बुद्धिमान हैं उन्हें जहाँ पूर्व अवस्था में नाना तरह के ऐश आराम किये गये हैं वहीं फिर नौकर की तरह रहना उचित नहीं है। ठीक वही हालत अभी मेरी है। धन प्रभुत्व सब तो नष्ट हो चुका और दरिद्रता सामने खड़ी है इसलिये कहीं अन्यत्र ही जाना चाहिये। फिर वहाँ दुःख हो अथवा सुख! क्योंकि पाप और पुण्य का फल बिना भोगे नहीं छूटता है, यही विचार कर अकृतपुण्य की माता ने चने का पाथेय बनाया और पुत्र को साथ लेकर कहीं अन्यत्र जाने के विचार से प्रयाण यात्रा कर दी। और चलती-चलती अवन्ती देश के अन्तर्गत सीसवाक ग्राम में पहुँची, पुत्र का मार्गश्रम दूर करने के लिये ग्राम के स्वामी के गृहाङ्गण में बैठ गई। स्वामी का नाम था बलभद्र। उसे देखकर बलभद्र ने पूछा- माता! तुम कहाँ जाओगी? इतना पूछने पर भी बिचारी लज्जा के मारे कुछ उत्तर न दे सकी। तब बलभद्र ने फिर आग्रह के साथ पूछा- तब बोली भाई! पाप के उदय से जीवों को बहुधा दुःख ही उठाने पड़ते हैं। मैं दैव की मारी मगधदेश से यहाँ आ निकली हूँ और वहीं जाऊँगी जहाँ मेरी जीविका हो सकेगी। सुनकर बलभद्र बोला- यदि तेरी ये इच्छा है तो यहीं रह और मेरे घर में भोजन बनाया कर। और तेरे पुत्र मेरी गाय के बछड़ों को वन में चरा लाया करेगा। मैं तुम्हारे लिये उचित वस्त्र एवं भोजन का प्रबन्ध कर दूंगा। उसने बलभद्र के कहने को स्वीकार किया। बलभद्र ने उसके रहने के लिये अपने घर ही के पास एक छोटी से झोपड़ी बनवा दी। माता-पुत्र वहीं पर रह कर उसकी

नौकरी करने लगे और बलभद्र के द्वारा दिये हुये वस्त्र भोजनादि से अपना निर्वाह करने लगे। बलभद्र के सात पुत्र थे। उनके लिये प्रातःकाल खाने के लिये सदा खीर का भोजन बना करता था। सो उन्हें खीर खाते देख कर अकृतपुण्य भी अपनी माता से रोज-रोज खीर मांगने लगा। माता ने उत्तर दिया- पुत्र! तू नहीं जानता कि- बिना पुण्य के ऐसा उत्तम भोजन नहीं मिल सकता। तूने न तो पर भव में और न यहीं कुछ पुण्य कमाया है। अब तू ही कह, मैं तुझे कहाँ से खीर का भोजन दे सकती हूँ? देख! उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, धन, धान्य और सुख ये सब धर्म के बिना कभी नहीं मिलते हैं। इसी तरह उसे उसकी माता ने बहुत समझाया, तो भी वह कर्तव्याकर्त्तव्य को न जान सका। इसलिये प्रतिदिन वह खीर मांगा करता था और न मिलने पर रोने लगता था। उसे रोता हुआ देखकर बलभद्र के पापी पुत्र बेचारे को थप्पड़ों से मारा करते थे। इसी तरह मारते-मारते एक दिन उसे कहीं अधिक चोट लग गई, उसका मुंह सूज कर विकृत हो गया। अकृतपुण्य की ऐसी दशा देखकर बलभद्र ने उससे पूछा- क्यों यह मुख कैसे सूज गया है? उसने कहा प्रभो! खाने को खीर मांगा करता था, परन्तु था तो पाप का उदय, सो वह कैसे मिल सकती थी? उसके बदले आपके पुत्रों ने मेरी यह दशा की है, यह सुनकर बलभद्र को बड़ी दया आयी, अतः उसने अकृतपुण्य की माता से कह दिया कि तू मेरे घर से दूध, घी, चावल, शक्कर अपने घर ले जाकर खीर बनाना और उसे पुत्र को खिलाकर उसकी अभिलाषा पूरी करना। बलभद्र के कहे अनुसार वह चावल वगैरह अपने घर लायी और पुत्र से बोली- पुत्र! आज मैं तुझे खीर खाने को दूंगी सो तू घर पर जल्दी ही आ जाना। अकृतपुण्य माता से यह कहकर कि- जैसा तुम कहती हो मैं वही करूंगा, ऐसा कह गाय के बछड़ों को लेकर खुशी के साथ वन में चला गया। उधर उसकी माता ने खीर बनाई। इतने में मध्याह्न होते-होते अकृतपुण्य भी घर आ गया। उसे वहीं बैठाकर और यह कहकर "पुत्र यदि कोई साधु हमारे घर पर आ जावे तो यहाँ से जाने मत देना। उन्हें आहार दान देकर ही बाद में अपन खीर खावेंगे।

दान, सातिशय पुण्य प्राप्ति का अनुपम कारण है, दुर्गति का नाश करने वाला है। देख! उत्तम पात्र को दान देने से हम लोगों को जन्म-जन्म में ऐसा ही उत्तम आहार मिला करेगा और सब तरह का सुख भी मिलेगा। उत्तम दान देने से ही गृहस्थाश्रम सार्थक होता है, दोनों लोक में सुयश फैलता है, पुण्य कर्म का बन्ध होता है। दानी लोगों को उत्तम सुख, सम्पत्ति एवं नाना विभूतियाँ मिलती हैं। जिन लोगों के यहाँ उत्तम पात्रों को दान नहीं दिया जाता है, उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाँव या शमशान की तरह है, निन्दित है, पाप का कारण है, अशुभ है और दुर्गति को देने वाला है। देख! हमने पहले दान नहीं किया इसी से तो आज दरिद्रता का दुख सहना पड़ा है और यही करण है कि हमको उत्तम-उत्तम भोजन नहीं मिलता। इसलिये हमे (प्रत्येक सद्गृहस्थ को) सत्पात्रों के लिये दान जरूर देना चाहिये। जिससे हमारा गृहस्थाश्रम और जीवन सफल हो सके। साथ ही उत्तम पुण्य, सम्पूर्ण अनुकूल साधनों, सुख, सुविधाओं तथा लक्ष्मी की सम्प्राप्ति हो सके।" ऐसा कह कर वह स्वयं जल भरने के लिये चली गयी। इतने में ही पुण्योदय से बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप अमूल्य रत्नत्रय के आधार, दाता को सुख देने के लिये दूसरे कल्पवृक्ष, तपश्चरण के द्वारा क्षीण शरीरी, गुण राशि विराजमान संसार के जीवों का हित करने में सदा उत्सुक, अङ्ग पूर्व रूप समुद्र के पारगामी, ईर्यापथ रूप उत्तम नेत्र के धारक, समस्त पर वस्तुओं में उदासीन, ऊँच-नीच का विचार न करने वाले, धर्म के उपदेशक, इन्द्र, धरणेन्द्र, राजा, महराजा और भव्य पुरुषों के द्वारा वन्दनीय, महनीय (अर्हनीय) और स्तवनीय, लाभ-अलाभ, सुख-दुःखादि में समदर्शी, जितेन्द्रिय, शांतमूर्ति, परम कारूणिक, दिशारूप, वस्त्र के धारक, धीर, अनेक ऋद्धियों से विभूषित और सर्वोत्कृष्ट महापात्र सुव्रत मुनिराज को एक महीने के उपवास के पारणा के दिन शरीर स्थिति के लिये बलभद्र के घर की ओर आते हुये पास ही में देख कर, अकृतपुण्य शुद्ध मन से विचारने लगा। अहो! ये बहुत बड़े साधु हैं। देखो! इनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं है। ये मेरे

बड़े भारी पुण्य से आये हैं। इन्हें मैं न जाने दूँ। यों विचार कर सरल अकृतपुण्य पुण्य से प्रेरित किया हुआ झट से उनके सामने जा खड़ा हुआ और अभिवन्दना कर बोला। पूज्य! माता ने बहुत अच्छी खीर बनाई है, वह आपके भोजन के लिये दी जावेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें तब तक जल लेकर मेरी माता भी आई ही जाती हैं। मुनिराज उसे मौन में ही यह समझाकर कि हमारा यह मार्ग नहीं है रास्ते में धीरे-धीरे चलने लगे इतने में वह भी उनके आगे होकर जोर से बोलने लगा। तात! मेरे ऊपर दया कर थोड़ी देर ठहरो और यहाँ से न जाओ, बड़ी ही अच्छी खीर बनी है। कहो तो तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ जाता है? इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज न ठहरे तो अकृतपुण्य उनके पाँव पकड़ कर बोला- देखो! अब तो मैंने अपने हाथो से आपके पैर खूब ही जोर से पकड़ रखे हैं, देखूं! कैसे जा सकोगे? महाराज! आप बड़े ही दुर्लभ हैं इत्यादि! (फलस्वरूप) मुनीन्द्र का भी दिल कुछ करुणार्द्र हो आया सो उसी खेदित न कर थोड़ी देर तक समौन वहीं खड़े रहे। सच तो है साधु लोग सब पर दयालु होते हैं न? इतने ही में शुभोदय से उसकी माता भी जल लेकर आ गयी। मुनिराज को देखकर उसे बहुत खुशी हुई, जैसे किसी निर्धन को दुर्लभ विपुल धनराशि के अनायास मिल जाने से खुशी होती है, सिर पर घड़ा जमीन पर उतारकर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया और विभो! तिष्ठ! तिष्ठ!! तिष्ठ!!! कहकर स्वामी का पड़गाहन किया, पश्चात् घर में लिवा ले जाकर उनके विराजने को ऊँचा आसन दिया, जगदगुरू को उस पर बैठाकर गर्म जल से उनके चरण कमल धोये और उस पाद-पवित्र जल को ललाट में लगाकर उनकी अष्ट द्रव्य से पूजा की। पश्चात् प्रणाम कर मन वचन काय की शुद्धि से अकृतपुण्य की माता ने पुत्र के साथ-साथ बड़े भारी शुभ (पुण्य) का उपार्जन किया। क्योंकि ये नवधा भक्ति (पड़गाहन, उच्चासन, पाद प्रक्षालन, अर्चना, प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि एवं आहार जल की शुद्धि) इनका विशेष कथन सम्पादक आचार्य वसुनंदी मुनि की "आहार दान" नामक कृति में देखें। पुण्य सम्पादन की हेतु

हैं। मृष्टदाना श्रद्धा, शक्ति निर्लोभिता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा इन सप्त गुणों से युक्त हो उन उत्तम पात्र (मुनिराज) को मधुर, प्रासुक, निर्दोष, तृप्ति कारक और तपवर्द्धक खीर का आहार देने लगी। मुनिराज को आहार करते हुये देखकर अकृतपुण्य बहुत आनंदित हुआ। उससे उसे सातिशय पुण्य का बन्ध हुआ। वह विचारने लगा- अहो! आज मैं कृतार्थ हुआ, मैं धन्य हूँ, पुण्यवान हूँ, मैं बहुत ही सुखी हुआ, आज मैं महादाता कहलाया, जन्म सफल हुआ, गृहस्थाश्रम भी आज कृतार्थ हुआ, आज मुझे बहुत ही पुण्य होगा और इसी से स्वर्गादि सुख भी मिलेगा। देखो न! आज मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो देव, राजा, महाराजा, मनुष्य, विद्याधरों के द्वारा अर्चनीय और वन्दनीय महापात्र मेरे घर में भोजन कर रहे हैं। इन्हीं पवित्र भावनाओं से शुद्ध हृदय अकृतपुण्य ने अपने सरल भावों के द्वारा बहुत कुछ पुण्य सम्पादन कर लिया। जो स्वर्गादि सुख का कारण है। उधर जितेन्द्रिय योगीराज ने भी खड़े-खड़े शांत भावों से स्वाद वगैरह का विचार न कर पाणिपात्र में आहार कर दाता को पावन किया और बाद में उन्हें शुभाशीर्वाद देकर आप ध्यानाध्यन के लिये वन विहार कर गये।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि से विभूषित थे। शास्त्रों का यह लेख है कि- जिस दाता के यहाँ उक्त ऋद्धिधारक साधुओं का आहार हो जाता है फिर उस दिन उसके यहाँ भोजन साम्रगी कम नहीं होती, उससे चक्रवर्ती के सैन्य तक का भोजन हो सकता है। ठीक ऐसा ही अकृतपुण्य के यहाँ ऋद्धिधारी मुनिराज का आहार होने से हुआ। भोजन सामग्री अक्षय हो गयी। जब मुनिराज आहार करके चले गये, तब अकृतपुण्य की माता ने अपने पुत्र को यथेष्ट भोजन कराया। परन्तु देखती है तो भोजन सामग्री उतनी की उतनी है। तब उसने अपने स्वामी बलभद्र को सकुटुम्ब भोजन के लिये बुलाया और उन्हें भी प्रेम व भक्ति पूर्वक भोजन कराया। तब भी वह भोजन सामग्री (खीर) कम नहीं हुई तो सारे शहर के लोगों को आमन्त्रित कर भोजन कराया, बाद में स्वयं भोजन किया। उस महादान से माता और पुत्र की बहुत ही प्रसिद्धि हुई। उन्हें सब लोग

मानने लगे, चन्द्रमा की तरह निर्मल सुयश चारो ओर फैल गया। और पुन्योपार्जन के करने वाले कहलाये।

कुमार! सुनो- यही दान दुर्गति का नाशक है, हित का करने वाला है। इसलिये बुद्धिमानों को दान देने में कभी आगा पीछा नहीं करना चाहिये। दान के द्वारा ही गृहस्थता गुणवती कही जाती है, बुद्धिमानों का प्रयत्न दान के लिये हुआ करता है, दान को छोड़कर कोई उत्तम सुख का देने वाला भी नहीं है, समझदार ही दान देने के योग्य होते हैं, दान ही दाता के मन को अपनी ओर खींचता है, इसलिये कहना यही है कि सब लोग दान जरूर ही दिया करें।

त्रिकाल सम्बन्धी तत्त्व के विवेचन करने वाले धर्म के अधिष्ठाता जिनेन्द्र, अन्तरहित निरुपम और लोकाग्रवासी सिद्ध तथा महातपस्वी पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु इन सब को मैं नमस्कार करता हूँ, वह इसलिये कि ये महात्मा लोग अपने-अपने गुण मुझे वित्तीर्ण करें।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में अकृतपुण्य के दान का वर्णन करने वाला चतुर्थ अधिकार पूर्ण हुआ।। 4।।

पंचम अधिकार

दृक्चिद्धत्तपो धर्मा नर्घ्यरत्नप्रदान्सतापू ।
त्रिजगत्स्वामिवन्द्याङ्घ्रीन्वदेऽहं परमेष्ठिनः ।।

दूसरे दिन अकृतपुण्य बची हुई खीर खाकर गाय के बछड़ों को चराने के लिये वन में चला गया। गरिष्ट आहार के करने से उसे निद्रा आने लगी सो एक वृक्ष के नीचे गाढ़ निद्रा-राक्षसी के बस हो गया। उधर गाय के बछड़े उसे न देखकर स्वयं घर पर आ गये। अकृतपुण्य की माता बछड़ों को देखकर विचारने लगी कि- क्या कारण है कि ये बछड़े तो आ गये और पुत्र नहीं आया? पुत्र की चिन्ता से दुःखी होकर रोने लगी। (बलभद्र से उसने ढूंढने को कहा) मृष्टदाना के आग्रह से बलभद्र अपने नौकरों को साथ लेकर उसके अन्वेषण को निकला। उधर जब अकृतपुण्य की निद्रा खुली तो देखता है कि बछड़े नहीं हैं। बड़ा ही व्याकुल होकर घर की ओर आ रहा था सो दूर से ही बलभद्र को अपने सामने आता देखकर डर के मारे पर्वत पर चढ़ गया। बलभद्र उसे देखकर घर लौट आया और अकृतपुण्य वहीं गुहा (गुफा) के बाहर खड़ा हो गया उसी गुहा में श्री सुव्रत मुनिराज - वन्दना के लिये आये हुये श्रावकों को व्रत का स्वरूप, भेद तथा फल सुना रहे थे, जिससे उन्हें धर्मलाभ हो सके। सो बाहर बैठा हुआ अकृतपुण्य भी सश्रद्धा सुन रहा था। उसका सार यह है -

जैसे वृक्षों का मूल उनकी मजबूती का कारण होता है, उसी तरह सब व्रत और धर्म का मूल उत्तम सम्यग्दर्शन है और वही त्रिभूवन पूज्य है। सप्ततत्त्व, नव पदार्थ, देव, गुरु और शास्त्र के शङ्कादि दोष रहित श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सप्तव्यसन महापाप के कारण और नरक में ले जाने वाले हैं, इसलिये बुद्धिमानों को पहले इनका परित्याग करना चाहिये। मद्य, माँस, मधु (शहद)

और पञ्च उदुम्बर फल के छोड़ने को आठ मूल गुण कहते हैं। ये मूल गुण पालन किये जायें और सातों व्यसन छोड़े जायें वही सब व्रतों की मूल दर्शन प्रतिमा है।

पाँच अणुव्रत, चार शिक्षा व्रत और तीन गुणव्रत ये बारह व्रत कहे जाते हैं। उनमें विकलत्रय (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) तथा पंचेन्द्रियों की मन, वचन, काय से जो व्रतिपुरुष व्रत लाभ के लिये रक्षा करते हैं, वह पहला अहिंसाणुव्रत है। यह व्रत सब धर्म तथा व्रत का बीज माना जाता है। देखो! जिन भगवान ने जितने व्रत समिति प्रभृति के पालने का गृहस्थ तथा साधुओं के लिये जो उपदेश दिया है, वह केवल इसी एक अहिंसा व्रत के लिये हैं।

हितरूप, परिमित, मधुर, धर्म को लिये हुये, संदेह रहित, सब जीवों के सुख के कारण, कोमल, दूसरों की निन्दा रहित और विश्वास योग्य सत्य वचन बोलने को सत्याणुव्रत कहते हैं। यह व्रत भी विद्या, कीर्ति और पुण्य का हेतु है।

आचौर्याणुव्रत उसे कहते हैं जो पड़े हुये, भूले हुये, खोये हुये और कहीं पर रखे हुये दूसरों के धन का न लेना है। जैसे काले सर्प के पकड़ने में भय होता है, उसी तरह उससे (दूसरों के धन से) भी धर्म की रक्षा के लिये पाप से डरने वाले पुरुषों को डरना चाहिये। क्योंकि इससे दूसरे लोगों को बड़ा ही दुःख होता है। व्रत का फल सुखोपभोग करना है।

शुद्ध हृदय, सुशील और अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखने वाले महात्माओं को अपने शीलव्रत की रक्षा के लिये संसार भर की स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री की तरह देखना चाहिये। यही त्रिभुवन जन महनीय चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है। बुद्धिमानों को लोभ कषाय घटाने के लिये धन, धान्य, सुवर्ण प्रभृति दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये। क्योंकि इस (परिग्रह) के द्वारा आशा दिनों-दिन बढ़ती जाती है और चिन्ता तथा दुःख होता है। यह है भी बुरा। अतः परिग्रह परिमाण स्वरूप यह परिग्रह प्रमाण पाँचवा अणुव्रत कहा गया है।

दया तथा सन्तोष के लिये योजनादि के प्रमाण से दस दिशाओं में जाने की संख्या (मर्यादा) करना है उसे दिग्विरतिव्रत कहते हैं।

जो निष्प्रयोजन हिंसादि पाप किया जाता है, उसके छोड़ने को अनर्थ दण्ड विरतिव्रत कहते हैं। अनर्थ दण्ड केवल पाप का कारण है। उसके- पापोपदेश, हिंसादान, बुरा चिंतवन, खोटे शास्त्रों का सुनना और प्रमादचर्या से पाँच भेद हैं।

अनंतकायिक कन्दमूलादि, सजीव फल पुष्पादि और आचार (अथाना) ये सब भी निंद्यनीय है। बुद्धिमानों को ये सब छोड़ देने चाहिये। एक वक्त ही सुख के कारण अन्नपानादि भोग्य वस्तुओं का और बार-बार उपभोग में आने वाली वस्त्र, स्त्री प्रभृति उपभोग वस्तुओं का इन्द्रिय रूप चोरों के वेग को रोककर शांति के लिये जो नियम करना है उसे भोगोपभोग नाम व्रत कहते हैं, यह व्रत सब सुख सामग्री का स्थान है।

शहर गली ग्राम आदि के द्वारा प्रतिदिन दिशाओं में गमन करने की संख्या (मर्यादा) का नियम करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

आर्त्त और रौद्रादि दुर्ध्यान के त्याग पूर्वक शांत भाव से प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायंकाल में मन वचन काय की शुद्धि के द्वारा- अर्हंतसिद्ध, जिन वचन, जिन धर्म और साधुओं (आचार्य, उपाध्याय, साधुओं) की वन्दना करने को सामायिक व्रत कहते हैं। यह व्रत धर्म का स्थान तथा पाप का निर्मूल नाश करने वाला है।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन- सब गृहारम्भ छोड़कर और गुरु के द्वारा उपवास का नियम करके धर्म ध्यान के द्वारा काल बिताने को प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। इसका फल स्वर्गादि सुख सामग्री का मिलना है।

नियम पूर्वक प्रतिदिन पात्रदान के लिये गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और साक्षात्पात्र के मिलने पर सभक्ति दान देना यह वैयावृत्य शिक्षाव्रत है। इसके द्वारा अपना और दूसरों का हित होता है। यही सब सुख का भी कारण है। इन बारह व्रतों का निरतिचार यावज्जीवन पालन करना चाहिये। और अन्तिम समय में मोह परिग्रहादि का परित्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण करनी

चाहिये। जब आयु के अन्त का परिज्ञान हो जाये तब उपवास आदि के द्वारा दोनों प्रकार की सल्लेखना धारण करना उचित है। क्योंकि इसी के द्वारा तो सब व्रतादि सार्थक होकर स्वर्ग और मुक्ति सुख के कारण होते हैं। इन्हीं बारह व्रत के पालने की दूसरी प्रतिमा कहते हैं। तीसरी सामायिक प्रतिमा है और चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है।

अप्रासुक और सजीव बल्कल, बीज, फल, पत्र, जल, प्रभृति सचित्त वस्तुओं का करुणा बुद्धि से जो छोड़ना है उसे पाँचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान ने इसे सब जीवों की हितकारक बताई है।

खाद्य, स्वाद्य आदि चार प्रकार के आहार का रात्रि में पतित्याग करना जिससे जीव हिंसा न होने पावे और दिन में ब्रह्मचर्य व्रत रखना (अपनी स्त्री के साथ भी दिन में विषय सेवन न करना) यह छठवीं रात्रि-भुक्ति-त्याग प्रतिमा का लक्षण है। इस प्रतिमा का फल आधे उपवास का होता है।

जो विरक्त महात्मा पुरुष यह समझकर कि स्त्रियाँ पुरीष के भरे कलश की तरह अपवित्र हैं, सो उन्हें दूर से ही छोड़ कर सर्वथा ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हैं यह सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा मानी गई है। यह प्रतिमा सब सुखों की खानी हैं और परम्परा से शिव सुख की साधन हैं।

जो पाप से डर कर सब प्रकार के गृह, वाणिज्य और कृषि आदि आरम्भ का अपने हित के लिए मन वचन काय पूर्वक परित्याग कर देते हैं। वह आठवीं आरम्भ-त्याग प्रतिमा कही जाती है। इसके द्वारा सब पापाश्रव का निरोध होकर सुख मिलता है।

जो सन्तोष रूप अनुपम खड्ग के द्वारा मूर्च्छा राक्षसी का नाम शेष करके त्रिशुद्धि पूर्वक वस्त्रावशेष सब परिग्रह का त्याग कर देते हैं, वही नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप में उत्तम रत्नों की खानि है।

मोक्ष सुख के चाहने वाले जो पुरूष-विवाह, खान, पान आदि जितने पाप के और जीवों की हिंसा के कारण गृह कार्य हैं, उनमें मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक सम्मति (सलाह) का परित्याग करते हैं, उसे अनुमति-विरति दशमी प्रतिमा कहते हैं। जिनेन्द्र देव ने इसे सब सुखों की जननी कहा है।

जो खण्ड वस्त्र के धारक केवल अपने शरीर स्थिति के लिये- कृत, कारित और अनुमोदना रहित निर्दोष भिक्षावृत्ति दूसरों के यहाँ करने जाते हैं (वह केवल इसी इच्छा से कि तपश्चरण निर्विघ्न सधता जाये) उसे उदिष्ट त्याग ग्यारवीं प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा त्रिभुवन महनीय है। जो श्रावक लोग इन ग्यारह प्रतिमाओं का संसार से उदासीन होने के लिये पालन करते हैं, वे वचन अगोचर सोलह स्वर्ग पर्यन्त सुखोपभोग करके अथवा चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी के स्वामी होकर अन्त में नियम से मोक्ष जाते हैं।

जब अकृतपुण्य ने इन व्रतों का स्वरूप सादर सुना तो उसकी इन में बड़ी ही श्रद्धा और ग्रहण करने की भावना हो गई। अहा! ये व्रत बड़े ही उत्तम और सब सुख के देने वाले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि मुझे प्रत्येक जीवन में इन व्रतों का लाभ हो सके? अकृतपुण्य के व्रतादि की भावना रूप उत्तम परिणामों के द्वारा जो शुभ कर्म का बन्ध हुआ उसे स्वर्ग सुख का साधन कहना चाहिये।

जब मुनिराज का धर्मोपदेश हो चुका तब सब श्रावक उन्हें नमस्कार कर और "णमों अरिहंताणं" इस मंत्रराज के आदि चरण का उच्चारण करते हुये शैल-गुहा के बाहर निकले।

अकृतपुण्य भी मंत्रराज का ध्यान करता हुआ उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगा, सो इतने में उसके पूर्व जन्म के प्रबल पाप के उदय से उसे एक क्षुधातुर व्याघ्र ने आकर खा लिया। अकृतपुण्य मंत्र का स्मरण करता हुआ ही ससमाधि धराशायी हो गया। उसने जो पात्र दान प्रभृति शुभ कर्मों के द्वारा पुण्य सम्पादन कर रखा था, वह इस वक्त काम आ गया सो उसे सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव का स्थान मिला। देखो! अकृतपुण्य का भाग्योदय जो कहाँ तो

उसके प्रबल पाप का उदय और कहाँ दुर्लभ पात्रदान, व्रत में शुभ भावना तथा निधि की तरह दुर्लभ मंत्रराज की अन्त समय में प्राप्ति? जो स्वर्ग के प्रधान कारण समझे जाते हैं। अथवा यों कहें कि जब तीव्र शुभ या अशुभ कर्म का उदय होता है, या शुभ व अशुभ जैसी गति होनी होती है, तब कभी-कभी उसी तरह की सामग्री भी स्वतः मिल जाती है।

उधर अकृतपुण्य की माता मोह के वश होकर प्रातःकाल ही बलभद्र को साथ लेकर उसे ढूंढने को निकली और धीरे-धीरे उसी पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ जाकर देखती है कि प्यारे पुत्र का आधा खाया हुआ कलेवर पड़ा हुआ है, उस शव को देखते ही उसकी जो दशा हुई वह अवर्णनीय थी। शोक का वेग उससे न रुका सो कातर स्वर से मुक्तकण्ठ होकर रोने लगी। उधर अकृतपुण्य दिव्य उपपाद शय्या में जन्म लेकर मुहूर्त मात्र में पूर्ण यौवन से युक्त सुन्दर देव हो गया। वह सोते हुये की तरह उपपाद शय्या से उठा और स्वर्ग की बड़ी भारी सम्पत्ति, देव सुन्दरियाँ, अपने सामने विनम्रता से खड़े देवता लोग और रत्नों के बने हुये उत्तम-उत्तम महल इत्यादि वैभव देखकर विचार करने लगा कि अहो! मैं कौन हूँ? यह सुखमय स्थान किसका है? ये दिव्य देह कैसे मिली है? ये सुन्दरियाँ किनकी हैं? और महलादि बहुत सी विभूति किसकी है? ऐसा मेरा कौनसा भाग्योदय है जो मैं ऐसे सुख स्थान में लाया गया। इतना विचार करते ही उसे अवधिज्ञान हो गया, जिसके द्वारा पूर्व जन्म की सब बातें जानी जा सकती हैं। उसके द्वारा यह सब महिमा उसने दानादि के फल की समझी। उसे मालूम हुआ कि मेरी माता रो रही है, सो पहले ही धर्म लाभ के लिये जिन मंदिर में गया और वहाँ उत्तम-उत्तम द्रव्यों से तथा गीत वादित्रादि से जिनेन्द्र भगवान की महापूजा की, जो पुण्य के उपार्जन की कारण है। बाद में स्वर्गीय विभूति स्वीकार कर विमान पर चढ़ा और बहुत सम्पत्ति के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया और उसे शोक से कातर देखकर बोला माता! तू नहीं जानती कि मैं तेरा पुत्र हूँ, परन्तु पात्र दान और व्रतादि से मुझे स्वर्ग में देव पद मिला है। इसलिये

व्यर्थ ही अब क्यों रो रही है? इससे तो उल्टा पाप का बन्ध होता है। देख! स्वर्ग बड़ा ही उत्तम स्थान है, उसमें सदा ही सुख रहता है। बहुत उत्तम-उत्तम विभूति है, जहाँ दुःख का नाम तक नहीं है। वहाँ के वैभव का प्रसार कुछ तुझे भी सुनाये देता हूँ। संख्यात और असंख्यात योजन चौड़े पञ्च वर्ण के विमान हैं, उनमें मणिमय जिनालय, महल और शैल बने हुये हैं, इच्छा के माफिक दूध देने वाली गायें हैं, कल्प वृक्ष हैं, और विपुल रत्नश्रेष्ठ चिन्तामणिरत्न हैं, लावण्य रस की खानि बहुत सी देव, देवियाँ, सुन्दरियाँ हैं, अथवा यों समझ कि उत्तम-उत्तम जितनी सुख सामग्री है वह सब एक ही जगह इकट्ठी कर दी गई हैं। जहाँ दुःखी, दीन, रोगी, मूर्ख, निस्तेज, कुरूप और दरिद्री तो स्वप्न में भी नहीं दीख पड़ते हैं। न दुःखप्रद ऋतु हैं, न शीत हैं, न उष्ण है और न रात्रि दिन का ही भेद है। संक्षेप में यों कहें कि वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो दुःख जनक हो किन्तु सदा सुख जनक साम्यकाल रहता है, उसका वर्णन करना कवि लोगों को भी जरा मुश्किल है, इत्यादि सुख पूर्ण सौधर्म स्वर्ग में मैंने बहुत पुण्य से जन्म लिया है। यदि मैं यह भी कहूँ कि मैं सुख समुद्र में निवास करता हूँ तो कुछ अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसलिये माता! अब तुम शोक छोड़ो और मोह रूप शत्रु का नाश कर देव दुर्लभ संयम स्वीकार करो तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार माता को समझाकर सौधर्मेन्द्र अपने स्थान पर चला गया और सुख पूर्वक रहने लगा। मृष्टदाना अपने भूतपूर्व पुत्र के वचन सुन कर बहुत आश्चर्यन्वित हुई। शोक को हृदय की हटाया और विरक्त होकर फिर विचारने लगी- देखो! कितने आश्चर्य की बात है जो थोड़े ही दानादि शुभ कर्म करने से आज मेरा पुत्र कितने वैभव को भोगने वाला हुआ है, तो फिर ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो व्रतादि शुभ आचरणों के द्वारा ऐसे कामों में प्रवृत्त न होगा? क्योंकि बार-बार मानव जन्म का मिलना बड़ा ही दुर्लभ है। विचार के साथ ही मृष्टदाना ने सब गृह जंजाल छोड़ा और उसी वक्त अपने कल्याण के लिये जैनेश्वरी प्रवृजा (आर्यिका दीक्षा) स्वीकार की। बेचारी मृष्टदाना थी तो स्त्री ही न? सो उसे सहसा ज्ञान कैसे हो सकता

था? यही कारण है कि उसने कुछ विचार न कर अज्ञान से यह निदान कर लिया कि जन्मान्तर में भी यह मेरे प्रेम भाजन पुत्र हो। और शक्त्यनुसार जीवन पर्यन्त तपश्चरण करने लगी। अन्त में विशुद्ध भावों से मरण कर, आयु का भाग पूर्ण कर उसी स्वर्ग में देवी हुई।

बलभद्र ने भी देव को देखकर समझ लिया कि यह सब फल धर्म का है सो वह भी सब कुटुम्बादि को छोड़ कर दीक्षित हो गया और अन्त में समाधि पूर्वक जीवन पूर्ण कर तपश्चरण के प्रभाव से उसी जगह देव हुआ। मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं- हे कुमार! वही बलभद्र सौधर्म स्वर्ग में बहुत काल पर्यन्त अच्छे-अच्छे सुख भोग कर अन्त में वहाँ से चय कर तुम्हारा पिता धनपाल हुआ है। मृष्टदाना की जीव तुम्हारी माता है। इसी से उसका तुम्हारे पर अधिक प्रेम है और जो भूतपूर्व वत्सपाल बछड़ों का पालने वाला (अकृतपुण्य का जीव) देव हुआ था वही तुम हो। स्वर्ग में तुमने बहुत काल तक उत्तम-उत्तम सुख भोगे हैं और अपनी सुन्दरियों के साथ-साथ जिन पूजादि शुभ कर्म भी बहुत किये हैं, यही कारण है कि यहाँ भी तुम्हें वही अपूर्व सुख है और जो बलभद्र के दुष्ट सात पुत्र थे वे ये ही सब देवदत्त प्रभृति सात भाई हैं। सो उसी पूर्व बैर के सम्बन्ध से तुम से ईर्ष्या करते हैं, तुम्हें मारना चाहते हैं और पैड-पैंड (पग-पग) में जो तुम्हें खजाने मिलते हैं और विघ्न नष्ट होते हैं सो यह सब पात्रदान का फल है। बस यही तुम्हारी जीवनी का सार है।

हे कुमार! यह तो तुमने अच्छी तरह जान लिया कि - तुम्हें जो यह पूर्ण लक्ष्मी का और सौन्दर्यता का लाभ हुआ है, वह केवल पूर्व जन्म के सुपात्र दान, व्रत में उत्तम भावना और अर्हद्भगवान के नाम स्मरण का फल है। इसलिये अब भी तुम्हें उचित है कि उपर्युक्त शुभ कर्मों के द्वारा धर्म सेवन करो। देखा! यही धर्म तुम्हारे अभिष्ट का देने वाला है।

अन्त में कहना यह है कि-

जब तुम संसार में रहो धर्म मत भूलो, धर्म का आश्रय लो, धर्म के द्वारा

धर्म के अपूर्व सार को समझो, धर्म के लिये अभिवन्दना करते रहो, धर्म को छोड़कर किसी दूसरे की सेवा मत करो, धर्म की मूल करुणा है, उसे सदा याद रखो, धर्म में निश्चलचित्त रहो और धर्म ही से यह प्रार्थना करो कि - हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति आचार्य विरचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के जन्मान्तर का वर्णन करने वाला पाँचवां अधिकार पूर्ण हुआ।। 5।।

छठ्वाँ अधिकार

त्रिजगन्नाथनाथेभ्यो गरिष्टेभ्यो महागुणैः।

परमेष्टिभ्य आत्माप्त्यै विश्वर्च्येभ्यो नमोऽन्वहम्।।

धन्यकुमार, मुनिराज रूपी चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न हुये, जन्म, जरा और मरण के नाश करने वाले तथा शिव सुख के कारण भूत धर्मामृत का पान कर बहुत सन्तुष्ट हुआ, और साथ ही अपनी बुद्धि को धर्म में दृढ़ किया। बाद में मुनिराज को नमस्कार कर राजगृह जाने के लिये रवाना हुआ, धीरे-धीरे वहाँ पहुँचकर शहर के बाहर उसने एक बगीचा देखा। रास्ते की थकावट मिटाने के अभिप्राय से भीतर चला गया। जाकर देखता है तो सारा बगीचा सूखा पड़ा हुआ है। यहाँ पर प्रसंगानुसार कुछ बगीचे के सम्बन्ध की कथा लिख दी जाती है।

इस बाग के मालिक का नाम था कुसुमदत्त। उसका जन्म वैश्यकुल में हुआ था। यह (कुसुमदत्त) राजकीय काम करने वाले जितने कर्मचारी, माली लोग थे, उन सबका का स्वामी था। उसे सब मानते थे। जब उसने देखा कि बाग सारा सूख गया है तब उसने उसे काटना चाहा किन्तु एक दिन उसे अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन हो गये। कुसुमदत्त ने उन्हें नमस्कार कर पूछा स्वामी! मेरा उपवन सूख गया है सो वह फिर भी कभी फलेगा या नहीं? उत्तर में मुनिराज ने कहा वैश्यवर! कोई पुण्यात्मा महापुरुष दूसरे देश से आकर इस बाग में प्रवेश करेगा तभी यह फिर से फल पुष्पादि से समृद्ध होने लगेगा। कुसुमदत्त मुनिराज के कहे अनुसार निश्चय कर तभी से प्रतीक्षा करने लगा सो आज धन्यकुमार के प्रवेश मात्र से सूखे सरोवर निर्मल जल से भर गये और वृक्ष फल पुष्पादि से नम्र हो गये। सत्य है कि पुण्य के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है। धन्यकुमार वहीं जिन भगवान का ध्यान कर और सरोवर में से निर्मल जल पीकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ गया। जब यह हाल कुसुमदत्त ने सुना तो उसे झट से मुनिराज के वचन याद हो आये। मुनिराज के चरणों को परोक्ष नमस्कार कर बाग में आया और

कुमार को बैठा हुआ देखकर उसे नमस्कार कर पूछा- बुद्धिमान! क्या मुझे बातें बताकर कृतार्थ करेंगे? वे ये हैं - आप कौन हैं? किस सुकुल में आप का अवतार हुआ है? और कहाँ से आप चले आ रहे हैं? कुमार ने कहा - मैं वैश्य पुत्र हूँ, दूसरे देश में घूमता हुआ इधर आ निकला हूँ और मैं जैन धर्मी हूँ। कुसुमदत्त ने कहा यदि ऐसा है तो मैं भी तो जैनी हूँ, आपका और हमारा धार्मिक सम्बन्ध है, इसलिये हमारे यहाँ अतिथि होना स्वीकार करिये। धन्यकुमार ने यह बात मान ली। बाद में कुसुमदत्त, धन्यकुमार को बड़े सत्कार के साथ घर लिवा ले गया और उसकी प्रेम तथा भक्ति के साथ सेवा करने के लिये अपनी स्त्री से बोला- यह मेरी बहिन का पुत्र है, इसलिये इसका अतिथि सत्कार अच्छी तरह से होना चाहिये। कुसुमदत्त की स्त्री ने यह समझ कर कि यह भावी मेरे जवांई होने वाला है, इसलिये धन्यकुमार को स्नान और भोजन वगैरह बड़े प्रेम के साथ करवाया।

कुसुमदत्त की एक सुन्दर कन्या थी। उसका नाम था पुष्पावती। सो वह धन्यकुमार के सौन्दर्य को देखकर उस पर मोहित हो गई। दूसरे दिन उसने यह विचार कर कि देखूं यह कितना बुद्धिमान है? सो उसके विज्ञानादि गुण की परीक्षा के लिये धन्यकुमार के सामने कुछ सुन्दर-सुन्दर फूल और सूत रख दिया। कुमार बुद्धिमान तो था ही सो उसने उन फूलों की अपनी चातुरी से बहुत सुन्दर एक माला गूंथ दी। उन दिनों राजगृह की श्रेणिक महाराज स्वामी थे। उन की कान्ता थी चेलना, और उसकी गुणवती नाम की पुत्री थी। पुष्पावती उसी राजकुमारी कि लिये प्रति दिन फूलों की माला बनाकर ले जाया करती थी। किन्तु आज वह धन्यकुमार की बनाई हुई माला लेकर गई। उसे देखकर राजकुमारी बोली- पुष्पावती! इतने दिन तू हमारे घर क्यों नहीं आई? उसने उत्तर दिया- सखि! क्या करूं? मेरे घर पिताजी की बहिन के पुत्र आया हुआ है, उसी की सेवा में लगी रहती हूँ। यही कारण मेरे न आने का है। जब राजकुमारी की आँख उस माला पर पड़ी, तो उसने पुष्पावती से पूछा- आज तो माला बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती है कह तो सही, यह किसने गूंथी है? पुष्पावती ने कहा- यह

उसी सुचतुर भाग्यवती का काम है। सुनकर राजकुमारी कुछ हंस कर बोली तू तो बड़ी ही भाग्यशाली है, जो ऐसे उत्तम वर की तुझे सङ्गति मिलेगी।

एक दिन धन्यकुमार बाजार में जा रहा था, सो चलते-चलते अपनी इच्छा से किसी सेठ की दुकान पर बैठ गया। उस वक्त सेठ महाशय को व्यापार में बहुत अच्छा फायदा हुआ। इसका कारण उन्होंने दुकान पर बैठे हुये पुण्यात्मा धन्यकुमार को ही समझ कर उससे कहा- मित्र! मेरी एक सुन्दर कन्या है, उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करूंगा। ठीक है- धर्मात्माओं को धर्म के द्वारा सब जगह लाभ हुआ करता है। दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया सो उसे भी व्यापार में अच्छा फायदा हुआ, उसने भी इसका कारण धन्यकुमार को ही समझ कर कहा कि - भद्र! सुभद्रा नाम की एक मेरी बहिन की लड़की है, उसका विवाह तुम्हारे साथ किया जावेगा।

वहीं एक राज श्रेष्ठी रहता था। उसका नाम था श्रीकीर्ति। एक दिन उसने सारे शहर में यह ढिंढोरा पिटवाया कि "जो वैश्यपुत्र तीन काकिणी (दमड़ी) के द्वारा एक ही दिन में एक हजार दीनार पैदा करके मुझे देगा उसके साथ अपनी धनवती पुत्री का विवाह कर दूंगा" ढिंढोरे को सुन कर उसी वक्त धन्यकुमार ने काकिणी (दमड़ी) ले ली। उसके द्वारा उसने माला लटकाने के तृण खरीदे और उन्हें माली लोगों को देकर बदले में कई रंग के उनसे फूल ले लिये। उन फूलों की अपने ही हाथों से बहुत सी सुन्दर-सुन्दर मालायें बनाकर उन्हें, खेलने के लिये वन में जाते हुये राजकुमारों को दिखलाई। देखकर राजकुमारों ने मालाओं का जब मूल्य पूछा तो धन्यकुमार ने एक हजार दीनार कहा। जब तीव्र पुण्य का उदय होता है तब कहीं न कहीं से अपनी इच्छा के अनुसार कारण भी जरूर मिल जाते हैं। ठीक यही धन्यकुमार के लिये भी हुआ उन राज पुत्रों ने एक हजार दीनारें देकर वे सब मालायें खरीद लीं। धन्यकुमार ने दीनारें ले जाकर सेठ को दे दीं। सेठ ने अपना वचन पूरा करने के लिये धन्यकुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसी तरह बुद्धिमान धन्यकुमार की बहुत प्रशंसा

सुनकर और गुप्त रीति से उसके रूप को देखकर राजकुमारी गुणवती उस पर जी जान से मुग्ध हो गई। दिनों दिन उसी की चिन्ता से उसका शरीर भी सूखने लगा।

एक दिन धन्यकुमार ने, मंत्री- आदि बड़े-बड़े लोगों के पुत्रों के साथ उनका मान मर्दन करने के लिए जुआ खेला था, सो उसने (धन्यकुमार ने) उन लोगों को बात की बात में जीत कर अभिमान रहित कर दिया। वहीं पर श्रेणिक महाराज का पुत्र अभयकुमार भी बैठा हुआ था। उसे अपनी चतुरता पर बड़ा घमण्ड था। उसके साथ कितने और भी धनुर्धारी योद्धा थे। सो वह धन्यकुमार के साथ बाण के द्वारा लक्ष्य वेधने के लिये झगड़ा करने लगा, बाद में चन्द्रक यंत्र का वेधना निश्चित किया गया। यद्यपि इसका वेधना हरेक के लिये बड़ा ही कठिन है, तो भी धन्यकुमार ने पुण्य प्रभाव से उसे वेधकर देखते ही देखते राजकुमार (अभयकुमार) को हरा दिया। यह अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ, तो सब मिलकर उसके साथ बैर करने लगे और किसी तरह उसे मारने का उपाय करने लगे। बेचारा धन्यकुमार धर्मात्मा और सरल हृदय था, सो उसे इन लोगों का कपटभाव ज्ञात न हुआ।

उधर राजा श्रेणिक को पुत्री के दिनों दिन दुबली होने का जब कारण ज्ञात हुआ तो विचार कर अपने पुत्र वगैरह से पूछा - देखो! यह कुमार रूपवान और गुणी है। इसके साथ गुणवती का विवाह किया जाना उचित है या नहीं? उनमें से अभयकुमार आगे होकर ईर्ष्या से कहने लगा कि वह विदेशी है, उसके कुल तथा जाति का कुछ ठिकाना नहीं। क्या मालूम अच्छे हैं या बुरे? इसलिये कन्या का देना मेरी समझ के अनुसार सर्वथा अनुचित है। अभयकुमार का कहना सुनकर श्रेणिक ने खुले शब्दों में कहा कि देखो! गुणवती के दिल में तो उसी की चाह है, और इसी से वह दिनों दिन कामाग्नि से जली जा रही है। यदि ऐसी हालत में भी उसका विवाह न किया जाये तो उसके जीने का क्या उपाय है? अभयकुमार से न रहा गया सो उसने साफ-साफ कह दिया। पिताजी!

इसका यह उपाय हो सकता है कि जब तक वह जीता रहेगा तभी तक गुणवती का काम जनित दुःख भी बढ़ेगा ही। इसलिये ..... सुनकर श्रेणिक ने घृणा के साथ कहा कि "वह बेचारा निरपराध है उसको मैं कैसे मरवा सकता हूँ? यह न्याय नहीं किन्तु अन्याय है।" अभयकुमार ने फिर कहा- अच्छा, आप कुछ न करें, हम ही इसके मारने का कोई उपाय कर इसका अभिमान दूर करेंगे। उत्तर में श्रेणिक ने किसी तरह पुत्र को समझाने के लिये कहा। वह क्या उपाय है? जिससे इसे मार सकोगे? राजकुमार बोला- शहर के बाहर राक्षसों का एक स्थान है। पहले उसमें कितने ही लोग राक्षस के हाथ से मारे गये हैं, इसलिये "जो धीर पुण्यवान इस स्थान के भीतर जायेगा उसके लिये आधा राज्य तथा पुत्री दी जायेगी" शहर भर में ऐसा ढिंढोरा पिटवाना चाहिये, सो उसे सुनकर वह नियम से अभिमान में आकर उस मकान के भीतर जायेगा सो ही मारा जावेगा। पुत्र के विचार अनुसार श्रेणिक ने ढिंढोरा पिटवा दिया। धन्यकुमार ने उसे सुना, फिर भला मकान के भीतर गये बिना उसे कैसे चैन पड़ सकता था? उसे बहुत लोगों ने मना भी किया परन्तु उसने किसी की न सुनी और दोपहर के वक्त खेलता हुआ बिना आयास के जैसे अपने घर में जाना होता है उसी तरह निडर होकर राक्षस भवन में चला गया। धन्यकुमार को देखते ही राक्षस उल्टा शांत हो गया और सामने आकर उसे नमस्कार किया। बाद में सत्कार पूर्वक सुन्दर आसन पर बैठाकर विनय से बोला- विभो! आप मुझे अपना दास समझें। मैंने इतने काल तक खजाञ्ची होकर आपके इतने बड़े भारी मकान की और धन की रक्षा की है। अब आप आ गये हैं, सो आप अपना धन सम्हाल लीजिये। यह आप ही के पुण्य का कमाया है। ऐसा कहकर सब धन धन्यकुमार के सुपुर्द कर दिया। और "जब आप मुझे याद करेंगे तब हाजिर हो सकूंगा, मैं आप का दास हूँ" इतना कहकर अन्तर्हित हो गया। धन्यकुमार ने शुभ ध्यानपूर्वक रात्रि वहीं बिताई। सच कहा है कि "पुण्यवानों को सब जगह लाभ ही लाभ हुआ करता है।" उधर जब उन कन्याओं को धन्यकुमार के राक्षस भवन में जाने का हाल मिला तो

सभी ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि जो गति धन्यकुमार की होगी, वही हमें भी मंजूर है। रात्रि पूर्ण हुई, सवेरे का उजाला चमकने लगा। इतने में धन्यकुमार भी प्रातः कालीन सामायिकादि क्रिया करके बहुत खुशी के साथ मकान से बाहर निकल कर शहर की ओर आने लगा। उसे धन लेकर शहर की ओर आते हुए देखकर राजा वगैरह को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे अपने दिल में विचारने लगे कि यह साधारण पुरुष नहीं है, किन्तु नर - केसरी है। इसे कोई नहीं जीत सकता। यह बड़ा भारी पुण्य-पुरुष है। यही समझकर श्रेणिक और अभयकुमार आदि आधी दूर तक उसके सामने गये और उसे बहुत सम्मान पूर्वक लाये। बाद में राजमहल में लिवा जाकर भूषण वस्त्रादि से उसका सत्कार किया और पूछा- प्रेमपात्र! कहो तो तुम किस उत्तम कुलरूप आकाश के विशाल चन्द्रमा हो और अकेले ही किस काम के लिये यहाँ आये हुये हो? उत्तर में धन्यकुमार ने कहा- मैं उज्जयिनी में रहता हूँ और वैश्यकुल में मेरा जन्म हुआ है। तीर्थयात्रा करता हुआ इधर आ गया हूँ। सुनकर श्रेणिक बहुत खुश हुये और उसी समय बहुत धन खर्च कर अपने ही मकान में विवाह मण्डप तैयार करवाया और बहुत कुछ समारोह के साथ गुणवती आदि सोलह कन्याओं का धन्यकुमार के साथ विधि पूर्वक विवाह कर, सानन्द उसे अपना आधा राज्य दे दिया। धन्यकुमार को मनुष्य और देव आदि सब कोई सम्माननीय मानने लगे।

कुछ दिनों बाद - धन्यकुमार ने वैश्य आदि सभी जाति के मनुष्यों से युक्त एक सुन्दर नगर बसाया और वहाँ का राजा भी आप ही हुआ। बड़े-बड़े राज पुत्र भी उसके चरणों की सेवा करने लगे। धन्यकुमार सुख पूर्वक राज्य का पालन करने लगा। कुमार समय-समय पर जिन धर्म की बड़ी प्रभावना किया करता था। इस प्रकार धन्यकुमार के दर्शन उज्जयिनी में राजा मंत्री आदि सभी लोगों को बड़ा ही सुख कर होता था। परन्तु खेद है कि माता-पिता तो दिन रात दिल के भीतर ही भीतर इसके वियोग में जल रहे थे।

अब वृतांत कुछ धन्यकुमार के माता पिता का सुनिये- जब धन्यकुमार

वहाँ से चला आया उसी दिन घर के रक्षक देवता लोगों ने उसके माता-पिता और भाईयों को निकाल कर घर से बाहर कर दिया। वे सब वहाँ से निकल कर फिर अपने पुराने घर पर गये। इस वक्त इनकी हालत बड़ी ही बुरी थी। ये ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे दवाग्नि से जले हुये वृक्ष ही हों, वे सभी बड़े ही शोक से पीड़ित तथा दुःख के मारे विमूढ़ हो रहे थे। उस वक्त शहर के लोग बड़े ही आश्चर्य के साथ परस्पर में कहते थे कि देखो! ये लोग कितने निर्दयी और पापी हैं, इनका हृदय वज्र की तरह बहुत कठोर है, जो ऐसे सुपुत्र के चले जाने पर भी अभी तक जीते हैं। अथवा यों कह लो कि दुःखी पुरुषों के पास मृत्यु भी आकर नहीं फटकती है, क्योंकि उन के बड़ा ही खोटे कर्मों का उदय बना रहता है।

उन लोगों के अन्याय करने से थोड़े ही दिनों में जितना पुराना और नवीन धन था, वह सब जाता रहा और कुपात्रों के तीव्र पाप से इन की यहाँ तक दशा बिगड़ी कि खाने और पेट भरने तक की मुश्किल पड़ने लगी। तब धनपाल किसी काम के बहाने से राजगृह निवासी अपनी बहिन के लड़के (जो अधिक धनी था) शालिभद्र के पास गया। अथवा यों कहें कि उसके कुछ पुण्य का उदय हुआ। वहाँ जाकर धन्यकुमार के मकान के नीचे बैठकर लोगों से शालिभद्र का मकान पूछने लगा। मकान के ऊपर ही धन्यकुमार बैठा हुआ था सो उसने देख कर उसी वक्त पहचान लिया कि ये मेरे पिता हैं। झट से नीचे उतरा और पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ा, बेचारा पिता उस समय फटे पुराने वस्त्र पहने हुये था, गरीब के समान जान पड़ता था, सेठ होने पर भी, दरिद्र और उसमें कुछ भेद न था। राज कर्मचारी और पुरवासी लोग यह घटना देखकर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे। धनपाल यह घटना देख कर बोला- नराधीश! तुम पुण्यात्मा हो, तुम्हारा अखण्ड प्रताप है, इसलिये सुख पूर्वक बहुत काल तक पृथ्वी का पालन करो। मैं एक दरिद्री वैश्य हूँ, और तुम पृथ्वी के मालिक राजा हो, इसलिये उल्टा मुझे तुम्हारे लिए नमस्कार करना चाहिये, न कि तुम मुझे नमस्कार करो। सुनकर धन्यकुमार बोला- आप ही नमस्कार के पात्र हैं, कारण आप मेरे पूज्य पिता हैं

और मैं आपका सबसे छोटा पुत्र हूँ। सुनते ही धनपाल के नेत्रों से मारे आनन्द के आँसू गिरने लगे। पुत्र को गले से लगाकर वह रोने लगा। धन्यकुमार की भी यही दशा थी। उन्हें मंत्री आदि लोगों ने बहुत कुछ समझाया तब भी प्रेम के आँसू का वेग उनसे रूक न सका। बाद में किसी तरह राजमहल में गये। धन्यकुमार ने पिता की वस्त्राभरण और भोजनादि से सेवा कर भाईयों का चरित्र, अपने आने का हाल और राज्य मिलने आदि की सब कुछ कथा कह सुनायी। बाद में माता और भाई बन्धुओं की कुशल पूछी। उत्तर में धनपाल बोला- वे सब बड़े मन्दभागी हैं, इस समय उनका जीवन बुरी दशा में है, पीछे पुराने ही घर में रहने लगे हैं, और पास कुछ भी पैसा नहीं है, जिससे कि उसके द्वारा निर्वाह कर सकें। जब तुम वहाँ से चले आये उसी दिन रात के वक्त घर के रक्षक देवता लोगों ने हम लोगों को निकाल दिया। इसी से हमें पुराने घर का आश्रय लेना पड़ा। हम लोगों में एक तुम ही पुण्यवान थे, सो तुम्हारे निकलते ही सब धन भी तुम्हारे साथ-साथ विदा हो गया। आज मैं अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूँ जो बहुत दिनों के बाद फिर तुम्हें देख पाया। पिता के वचन सुनते ही धन्यकुमार ने अपने नौकरों को खूब वस्त्र वगैरह देकर माता, भाई आदि को लिवा लाने को भेजा।

जब प्रभावती आदि को धन्यकुमार के समाचार मिले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, वे सब उसी समय वाहनों पर सवार होकर राजगृह आये। उनके आने का हाल सुनकर कुमार अपने साथ और भी कितने राजाओं को लेकर भक्ति पूर्वक उनके लिवा लाने के लिए आधी दूर तक सामने आया। रास्ते में अपनी माता को आती हुई देखकर बहुत विनय के साथ धन्यकुमार ने मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। माता भी पुत्र को देखते ही बहुत खुश हुई और गले से लगाकर शुभाशीर्वाद देने लगी। भाई लोग धन्यकुमार को देखकर हृदय में बहुत शर्मिन्दा हुए। यहाँ तक कि मुँह तक ऊँचा करना उन्हें मुश्किल हो गया। धन्यकुमार उनकी यह हालत देखकर बोला- भाईयों! यह आपकी ही दया है, जो मुझे इतनी

राज्य विभूति मिली है। आप लोग संदेह छोड़ें, और हृदय का खटका निकाल कर शुद्ध चित्त हो जावें। क्योंकि कर्म के उदय से अच्छा बुरा तो हुआ ही करता है। धन्यकुमार का सीधापन देख कर उन्होंने उसकी प्रशंसा की और अपने अपराध क्षमा कराकर, अपने को धिक्कारने लगे। बाद में धन्यकुमार अपने कुटुम्बियों को लेकर बहुत ठाट-बाट के साथ शहर में होकर अपने मकान पर आया वहाँ पर उन सबका स्नान, भोजन, वस्त्र, गहने आदि से बहुत सत्कार किया गया। तत्पश्चात् धन्यकुमार ने गृहस्थ धर्म के निर्वाह के लिए उन्हें सुवर्ण, रत्न, वाहन और ग्राम आदि सभी कुछ उचित वस्तु खुशी के साथ भेंट दी जिससे वे अपना निर्वाह कर सकें।

उपसंहार-

राज्य आदि वैभव का मिलना, देवता और मनुष्यों के द्वारा सत्कार का होना और बन्धु लोगों के साथ-साथ बहुत कुछ सुख के कारण उत्तम-उत्तम भोगों का भोगना यह सब पुण्य की महिमा है। इसलिए जो सुचतुर हैं उन्हें जरूर ही पुण्य कर्म करना चाहिए।

देखो! धर्म गुणों का खजाना और सब का भला करने वाला है। बुद्धिमान लोग ही धर्म की यथार्थ सेवा करते हैं, धर्म के द्वारा शुभ गति होती है, धर्म मोक्ष का कारण है, इसलिये नमस्कार के योग्य है, धर्म को छोड़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं दे सकता, धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, धर्म में मैं भी अपने चित्त को लगाता हूँ, हे धर्म! अब तुझे भी उचित है कि संसार में गिरने से मुझे बचावे।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के राज्यलाभ का वर्णन करने वाला छटवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।। 6।।

सातवाँ अधिकार

वीतरागजगन्नाथास्त्रिजगद्भव्यवन्दितान् ।
विश्वप्राणिहितान्वन्दे शिरसा परमेष्ठिनः ।।

एक दिन धन्यकुमार के मन में यह विचार आया कि- किसी तरह धन सफल करना चाहिए सो उसने बड़े-बड़े ऊँचे जिन मंदिर बनवाना आरम्भ किया और उनमें विराजमान करने के लिए सुवर्ण और रत्नों की सुन्दर प्रतिमायें बनवाईं। चारों संघ को बुलवाकर बहुत कुछ उत्सव के साथ जिन बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई। खूब धन खर्च किया। ये सब काम उसने केवल अपने भले के लिये किये थे, धन्यकुमार प्रतिदिन अपने घर के जिन चैत्यालय में बहुत कुछ भक्ति तथा महोत्सव के साथ पूजन किया करता था और दूसरों को भी करने के लिए प्रेरणा करता था। क्योंकि जिन पूजा सर्व सुखों की देने वाली है। जब मुनियों के आहार का वक्त होता तब स्वयं अपने घर के आगे खड़ा होकर मुनियों की बाट देखा करता और पात्र का समागम होने पर विधि पूर्वक बड़े विनय भाव से पवित्र आहार देता। भव्य पुरुषों के साथ सदा निर्ग्रन्थ गुरुओं की भक्ति, सेवा पूजा, वन्दना आदि किया करता था। उनके मुखारविन्द से श्रावक धर्म तथा मुनि धर्म का स्वरूप और तत्त्वों का व्याख्यान सुनता था, क्योंकि उसे विरागता बड़ी ही प्रिय थी। जिस दिन अष्टमी तथा चतुर्दशी होती उस दिन सब राज काज छोड़कर नियम पूर्वक उपवास किया करता था, क्योंकि उसे अपने पाप कर्म के नाश करने की बहुत चाह रहती थी। मुनि की तरह निराकुल होकर तीनों काल समता भाव पूर्वक शुद्ध सामायिक करता। उसने शंकादि दोषों को अपने आत्मा से हटाकर और साथ ही निःशंकितादि आठ गुणों को धारण कर सम्यग्दर्शन की निर्मलता अच्छी तरह प्राप्त कर ली थी। क्योंकि यही शुद्धि शिव सुख की कारण है। प्रायः यह बात सभी लोग मानते हैं कि ज्ञान, तीन लोक के पदार्थों को प्रकट

करने के लिये दीपक है सो धन्यकुमार भी अपने अज्ञान रूपी तम को हटाने के लिये बड़े-बड़े बुद्धिमानों तथा विद्वानों के साथ ज्ञान का अभ्यास सदा किया करता था। अपने योग्य श्रावक के व्रतों का निरतिचार हर वक्त पालन करता था। पवित्र मन से धर्म तथा धर्म के चिह्नों का मनन किया करता था, और सुख के लिये हरेक को धर्म का उपदेश दिया करता था। अपने शरीर के द्वारा जहाँ तक बनता था, धर्म पालन करने में किसी तरह की कमी नहीं रखता था। थोड़े में यों कह लीजिये कि धन्यकुमार मन, वचन, काय और कृतकारित-अनुमोदना से धर्म मय हो गया था।

वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि धर्म से धन मिलता है, धन से काम सुख मिलता है और काम के छोड़ने से अत्यन्त सुख का समुद्र मिलता है। इसलिये अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये मन, वचन, काय से धर्म का सेवन करने में लगा रहता था। वह धर्म की ही शक्ति समझनी चाहिये जो धन्यकुमार को सब सुख की कारण राज्य-लक्ष्मी मिली थी। वह हरेक तरह के उत्तम-उत्तम सुख के अनुभव से सुख-समुद्र में यहाँ तक डूबा था कि समय कितना बीत गया उसकी भी उसे खबर न रही।

एक दिन धन्यकुमार ने अपने सुभद्रा नामक स्त्री का मुख कुछ मलिन देखकर उससे पूछा-

प्रिय! तुम क्या यह बात कह सकोगी कि आज तुम्हारा मुख किस लिए मलिन है? ऐसा जाना जाता है कि तुम्हे किसी शोक ने धर दबाया है।

वह बोली- स्वामी! मेरा भाई शालिभद्र बहुत दिनों से धन, कुटुम्ब, शरीर और सुख सामग्री से उदासीन हो गया है और सदा वैराग्य युक्त हो, तल चिन्तवन पूर्वक घर ही में तप का अभ्यास किया करता है परन्तु आज यह मालूम हुआ कि वह जिन दीक्षा लेना चाहता है। विभो! उसे मैं बड़ी ही प्रेम की निगाह से देखा करती हूँ, सो उसका भावी वियोग सुनकर बड़ी दुःखी हो रही हूँ।

नाथ! आपके राज्य में मुझे सब तरह का सुख मिलने पर भी केवल भाई

का विरह दुःख ही दुःखी बना रहा है। यही मेरे शोक का हेतु है। यह सुनकर धन्यकुमार बोला बस! यही दुःख का कारण है? अभी ही जाकर मैं उन्हें सुमधुर वचनों से समझाये देता हूँ, जिससे हम सबको सुख होगा, अतः तुम शोक छोड़ो।

उसे यों समझाकर धन्यकुमार उसी वक्त अपने साले के घर गया और उसे उदासीन देखकर बोला-प्रियवर! आजकल आप हमारे घर पर क्यों नहीं आते हो? उत्तर में शालीभद्र ने कहा - मान्यवर मैं क्या करूं? संयम (मुनिपद) बड़ा ही कठिन है, सो उसी की सिद्धि के लिये तपश्चरण का अभ्यास यहीं रहकर किया करता हूँ, इसी से आपके घर न आ सका।

धन्यकुमार ने कहा - अच्छा, यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है, तो जल्दी करो। यहाँ तप का अभ्यास करने से क्या लाभ हो सकेगा? अरे! पहिले भी वृषभ आदि बहुत से महात्मा वर्षादि योग के धारण करने वाले हुये हैं, और तप के द्वारा मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने भी घर में अभ्यास किया था? नहीं! किन्तु मेघ विघटन वगैरह कुछ भी थोड़ा सा वैराग्य का कारण देखकर असंख्यात वर्षों तक भोगा हुआ भी राज्य-सुख देखते-ही-देखते निडर होकर छोड़ दिया और तप के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष में चले गये। वास्तव में उन्हें ही पुरुषोत्तम कहना चाहिये। तुम डरपोक जान पड़ते हो इसीलिये तप का अभ्यास करते हो। देखो! मैं अभी ही इस कठिन दीक्षा को भी बिना अभ्यास के ही ग्रहण किये लेते हूँ। तुम नहीं जानते कि संसार का नाश करने वाला पापी काल न मालूम कब तुम्हें वा मुझे अथवा औरों को लिवा ले जाने के लिये चला आवेगा? देखो! काल अपने गर्भ में रहने वाले जवान, दीन, दुःखी, सुखी, धनी और निर्धन आदि किसी की कुछ परवाह न कर सभी को अपना शिकार बना लेता है। इसलिये भाग्यवश जब तक वह न आने पावे उस के पहिले ही जिन दीक्षा लेकर हित के मार्ग में लग जाना चाहिये। क्योंकि जब तक जरा राक्षसी का शरीर पर अधिकार न जमा है, तब ही तक मोक्ष सुख का उपाय भी बन सकेगा और जहाँ बुढ़ापा शरीर में घुस गया फिर तप और व्रत का पालन कोसों दूर हो जाता है। इसलिये जो लोग

संसार से छूटना चाहते हैं, उन्हें जब तक इन्द्रियाँ अपना-अपना काम अच्छी तरह कर सकती हैं, तभी तक संयम ग्रहण कर लेना उचित है। क्योंकि जिन लोगों की इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, वे फिर संयम के योग्य नहीं हो सकते और बिना संयम के तप व्रत वगैरह सार्थक नहीं कहे जा सकते हैं। मनुष्य तो यह विचार करता रहता है कि आज व कल अथवा कुछ दिनों के बाद तप और व्रत धारण करूंगा और काल है सो पहिले ही आ धमकता है। यह जीवन चारे के अग्रभाग पर ठहरी हुई ओस की बूंद की तरह जल्दी नाश होने वाला है और युवावस्था बादल की तरह देखते-देखते नाश हो जायेगी। लक्ष्मी वेश्या की तरह चपल और बुरी है। चोर, शत्रु और राजा वगैरह सदा इसके छीनने की फिराक में रहते हैं, तथा यह लक्ष्मी दुःख की देने वाली है और दुःख ही के द्वारा कमाई जाती है। राज्य धूल के समान बुरा, सब पापों का कारण, चंचल और हजारों चिन्ताओं से भरा हुआ है, कौन बुद्धिमान ऐसे राज्य का पालन कर सुखी होगा? स्त्रियाँ मोह की बेलि, सब अनर्थ, अन्याय व अनीति के कारण और दुष्टा होती हैं। घर में रहना पाप और आरम्भ का स्थान है। शरीर रुधिरादि सात धातुओं से भरा है, अपवित्र, दुर्गन्धित और इन्द्रिय रूपी चोरो के रहने का घर है, इसे कौन अपना भला चाहने वाला भोगों के द्वारा पुष्ट करना चाहेगा? भोग हर वक्त भले ही भोगे जायें, परन्तु है असन्तोष और पाप ही के कारण। अरे! ये उत्पन्न या उपलब्ध होते भी हैं तो स्त्री के अपवित्र शरीर से ही न? फिर क्यों कर बुद्धिमान इनके द्वारा सुख की चाह कर सकता है? दुःख का समुद्र और विषम यह संसार अनन्त है, चार गतियों में भ्रमण करना इसका सार है, कोई कहे तो बुद्धिमानों को प्रेम करने के लिये इसमें क्या उत्तम वस्तु है?

इत्यादि हित कर और वैराग्य के वचनों द्वारा धन्यकुमार ने शालिभद्र के रोम-रोम में वैराग्य भर कर उसे मुनि पद के लिये प्रेरित कर दिया और उससे भी कहीं बढ़ा चढ़ा स्वयं वैरागी होकर जल्दी ही अपने घर पर गया। शालिभद्र धन्यकुमार का बड़ा भारी साहस देखकर सब धन और घर बार छोड़कर उसके

पीछे ही घर से निकला। धन्यकुमार ने घर पर आकर राज्य भार तो अपने बड़े पुत्र धनपाल को सौंपा और आप श्रेणिक, माता, पिता, भाई और बन्धुओं से क्षमा करा कर शालिभद्र तथा और भी कितने लोगों के साथ श्रीवर्द्धमान भगवान के समवशरण में गया। वहाँ त्रिभुवन के स्वामी महावीर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्ति पूर्वक विनीत मस्तक से नमस्कार किया और उत्तम-उत्तम द्रव्यों के द्वारा उनकी पूजा कर स्तुति करना आरम्भ की।

विभो! आप संसार के स्वामी हैं, सबका हित करने वाले हैं, बड़े भारी गुरु हैं, बिना कारण जगत के बन्धु हैं और आप ही जीवों को संसार के दुःखों से छुटाने वाले हैं। नाथ! आज आपके चरण कमलों के दर्शन कर मेरे नेत्र सफल हुये और हाथ आपकी पूजन करने से सफल हुये हैं। स्वामी! आपके दर्शन के लिये यहाँ आने से मेरे पांव भी कृतार्थ हुये हैं और नमस्कार करने से जीवन, जन्म तथा मस्तक पावन हुआ है। हे पूज्यपाद! आज मेरी जिह्वा आप के गुणों का गानकर सार्थक हुई है। और गुणों का ध्यान, चिन्तवन करने से मन पवित्र हुआ है। हे अनाथ- बन्धु! आज यह शरीर भी सफल है, जो आपके चरणों की इसने सेवा की और हम भी धन्य हैं जो आप की भक्ति से सुगन्धित हुये।

भगवन! यद्यपि यह संसार अपार है परन्तु आपके आश्रय करने वालों को तो चुल्लु भर मालूम देता है, क्योंकि आप इसके जहाज हैं न? नाथ! आप अनन्त गुण के स्थान हैं, आप की स्तुति गणधर बड़े-बड़े महामुनि भी नहीं कर सकते, तो उनके सामने हम लोग किस गिनती में हैं, जो थोड़े से अक्षरों का ज्ञान रखते हैं। इसलिये- हे देव! आपको नमस्कार है, आप के अनन्त गुणों को नमस्कार है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के देने वाले को नमस्कार है।

विभो! आपकी स्तुति और नमस्कार का प्रतिफल तपश्चरण के साथ-साथ रत्नत्रय चाहते हैं क्या आप दया करेंगे? अथवा हमें आप अपने ही समान बना लीजिये फिर सम्यक्त्वादि तो सहज ही प्राप्त हो जावेंगे। बस, यही

हमारा इच्छित फल है, और इसी के लिये आपके सामने हाथ जोड़े हुये खड़े हैं। बाद में भगवान के कहे अनुसार धन्यकुमार और शालिभद्र आदि सब महा पुरुषों ने शाश्वत मोक्ष सुख के लिये बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह का तथा मोह का मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक परित्याग किया, और मोक्ष की माता जिन दीक्षा स्वीकार कर अट्ठाईस मूल गुण धारण किये। तदनन्तर पाप कर्म का निर्मूल नाश करने के लिये अपनी शक्ति प्रगट कर बारह प्रकार का तप करने लगे। आलस छोड़कर द्वादशाङ्ग शास्त्र पढ़ने लगे जो कि अज्ञान दूर कर केवल ज्ञान का कारण है। कभी पर्वतों की गुहाओं में, कभी सूने घरों मे, कभी मसान में, कभी निर्जन जगह में और कभी भयंकर वन वगैरह में अपने ध्यानध्ययन की सिद्धि के लिये सिंह की तरह सदा निडर और सावधान रहते थे। तरह-तरह के आसनों के द्वारा तप करते थे। धर्मप्रचार के लिये हरेक देश, पुर, ग्राम, दुर्ग और पर्वतादि में घूमते थे। अटवी आदि में चलते-चलते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था, वहीं पर ध्यान करने लग जाते थे, क्योंकि जीवों की दया करना तो मुनियों का प्रधान कर्तव्य होता है न? जब चौमासा आता, प्रचण्ड वायु चलने लगती, चारों ओर भयंकर ही भयंकर सा दिखाई देता और सर्प, बिच्छू, मच्छर आदि जीवों की बहुलता हो जाती तो भी आप शरीर से मोह छोड़कर वृक्ष के नीचे ध्यान पूर्वक महायोग धारण करते। ठण्ड के दिनों में शीत से जले हुये वृक्षों की तरह खड़े होकर मैदान में अथवा नदी, तालाब के किनारों पर रहते और ध्यानाध्ययन करते। गर्मी के दिनों में सूर्य के तेज किरणों से गरम हुई और जलती हुई अग्नि की तरह बहुत दुःसह गर्म-गर्म शिलाओं पर ध्यान रूप अमृत के पास से आत्मानन्द में लीन होकर सूर्य की और मुँह करके कायोत्सर्ग ध्यान धरते, वह भी केवल कर्मों के नाश करने की इच्छा से। इसी तरह शास्त्रानुसार बहुत से कायक्लेशादि तप, अनन्त सुखमय मोक्ष की इच्छा से वे हर वक्त किया करते। क्षुधा, तृषादि महा कठिन बाईस परीषह तथा हिंसक जीवों के द्वारा दिये हुये घोर से घोर दुःख समता भाव से सहते। आर्त रौद्रादि खोटे-ध्यानों को आत्मा से हटाकर धर्म और

शुक्ल ध्यान की गुहादि में बैठ कर ध्यान करते। इन्द्रियों को अपने वश करते, महाव्रत की शुद्धि के लिये पच्चीस भावनाओं का, वैराग्य बढ़ाने के लिये बारह अनुप्रेक्षाओं का, धर्म वृद्धि के लिये दस लक्षण धर्म का, सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिये तत्त्वों का और मन तथा पाँचो इन्द्रियों के रोकने के लिय जैन शास्त्रों का निर्विकल्प चित्त से मनन करते इत्यादि कठिन-कठिन योग और तपों का इन साधुओं ने जीवन भर पालन किया, अन्त में धन्यकुमार महामुनि ने चारों प्रकार के आहार तथा शरीरादि में मोह छोड़कर अकेले ही निर्जन वन में पर्वत की तरह निश्चल खड़े होकर विधि पूर्वक सल्लेखना स्वीकार की। पहले ही क्षमादि अच्छे-अच्छे गुणों के द्वारा कषायों को घटा कर शरीर सल्लेखना करने लगे, सो थोड़े ही दिनों में उपवासादि के द्वारा सारा शरीर सुखाकर क्षुधादि परीषह जीती। धन्यकुमार मुनि के मुख और होठ आदि सभी सूख गये थे, तो भी उनमें धैर्य और मनस्विता थी। शरीर में केवल चमड़ा और हड्डियाँ मात्र रह गई थीं तब भी उनका महाबल और क्षमा-शीलपना बड़ा ही आश्चर्य उत्पन्न करता था। कभी बहुत सावधानी से चार आराधनाओं का आराधन करते, कभी पञ्च परमेष्ठी पद का और कभी परमात्मा का ध्यान करते। अन्त में सब सालम्ब ध्यान छोड़ कर निरालम्ब ध्यान करना आरम्भ किया। इसी तरह शुभ ध्यान, शुभ योग और शुभ लेश्याओं के द्वारा नव महीने तक सल्लेखना का पालन किया और अन्त में प्रायोपगमन मरण के द्वारा ध्यान और समाधि पूर्वक प्राण छोड़कर तप तथा धर्म के प्रभाव से सर्वार्थ सिद्धि में उपपाद शिला में जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में अतिशय सुन्दर शरीर के धारक अहमिन्द्र हो गये। वह अहमिन्द्र और जो अहमिन्द्र देव थे, उनके साथ भी अनेक तरह की धार्मिक कथा करता है, और कभी स्फटिकमणि के बने हुये स्वभाव से ही सुन्दर अपने महलों में अथवा नन्दन वन में खेला करता है। तैंतीस हजार वर्ष बाद कण्ठ में से झरता हुआ अमृत उसका आहार है और साढ़े सोलह वर्ष बाद उसे श्वासोच्छवास लेना पड़ता है। इसी तरह उत्तम-उत्तम सुख का उपभोग करता हुआ वह अहमिन्द्र सदा सुख

समुद्र में डूबा रहता है। आयु की मर्यादा पूरी होने पर यहीं राज्य कुल में जन्म लेकर मोक्ष जायेगा।

धन्यकुमार मुनि के अलावा शालिभद्रादि जितने मुनि थे, वे भी जीवन भर तपश्चारण कर और अन्त में समाधि पूर्वक प्राणों का परित्याग कर अपने-अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग से ले कर सर्वार्थसिद्धि तक गये।

उपसंहार-

देखो! दुःखी, दरिद्री अकृतपुण्य केवल दान की भावना तथा थोड़े से दान के फल से धन्यकुमार हुआ और फिर तपश्चरण के द्वारा सर्वार्थसिद्धि में गया। इसलिये हे गृहस्थो! इस उदाहरण से तुम्हें भी दान देने की शिक्षा लेनी चाहिये।

गुण के खजाने धन्यकुमार मुनिराज धन्य हैं, उनके गुणों की मैं स्तुति करता हूँ, और उन्हीं के बताये अनुसार मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहता हूँ, उनके लिये मस्तक नवा कर नमस्कार करता हूँ। उन्हीं के द्वारा स्तुति होने की आशा है, इसलिये उनके गुणों का ध्यानकर अपने मन को लगाता हूँ। हे महा धन्य पुरुष धन्यकुमार! क्या मुझे भी अपनी तरह धन्य न करोगे?

धन्यकुमार मुनि का यह निर्मल चरित्र है, इसे जो लोग भक्ति से पढ़ेंगे, धर्मसभाओं में वाचेंगे अथवा सुनेंगे वे लोग उत्तम परिणामों के द्वारा उत्पन्न होने वाले धर्म के फल से स्वर्ग सुख भोगकर बाद में तपश्चरण के द्वारा रत्नत्रय युक्त हो नियम से मोक्ष सुख के भोगने वाले होंगे।

अन्त में मेरी निर्दोष और गुणी विद्वानों से प्रार्थना है कि वे लोग थोड़े पढ़े हुये मुझ सकलकीर्ति के द्वारा केवल भक्ति से बनाये हुये इस चरित्र का संशोधन करें।

सारे संसार के हित करने वाले अर्हंत्, अनन्त सिद्ध, पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य, अपने शिष्य लोगों को पढ़ाने वाले उपाध्याय और स्वर्ग अथवा

मोक्ष के लिये उपाय करने वाले तथा कठिन-कठिन तपश्चरण करने वाले साधु लोग मुझे मोक्ष का कारण मङ्गल प्रदान करें, मैं उनकी स्तुति वन्दना करता हूँ।

इस चरित्र के सब श्लोक मिलाकर साढ़े आठ सौ होते हैं।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के सर्वार्थसिद्धि में गमन का वर्णन वाला सातवां अधिकार पूर्ण हुआ।। 7।।

।।ग्रंथ समाप्त।।

प० पू० आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज (निर्णय सागर) द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उपयोगी साहित्य

1. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
2. हमारे आदर्श
3. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
4. नंगानंग कुमार चरित्र
5. मौनव्रत कथा
6. सुदर्शन चरित्र
7. प्रभंजन चरित्र
8. सुरसुन्दरी चरित्र
9. चारुदत्त चरित्र
10. करकण्डु चरित्र
11. नागकुमार चरित्र
12. सीता चरित्र
13. सप्त व्यसन चरित्र
14. वीर वर्धमान चरित्र-1
15. वीर वर्धमान चरित्र-2
16. भद्रबाहु चरित्र
17. हनुमान चरित्र
18. महापुराण भाग-1
19. महापुराण भाग-2
20. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
21. यशोधर चरित्र
22. व्रतकथा संग्रह
23. रामचरित्र भाग-1
24. रामचरित्र भाग-2
25. आराधना कथा कोश भाग-1
26. आराधना कथा कोश भाग-2
27. आराधना कथा कोश भाग-3
28. शान्तिनाथपुराण भाग-1
29. शान्तिनाथपुराण भाग-2
30. सम्यक्त्व कौमुदी
31. धर्मामृत भाग-1
32. धर्मामृत भाग-2
33. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-1
34. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-2
35. अकंपमती
36. पुराण सार संग्रह भाग-1
37. पुराण सार संग्रह भाग-2
38. सुलोचना चरित्र
39. गौतम स्वामी चरित्र
40. महीपाल चरित्र
41. जिनदत्त चरित्र
42. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
43. चेलना चरित्र
44. धन्यकुमार चरित्र
45. सुकुमाल चरित्र
46. छत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
47. चन्द्रप्रभ चरित्र
48. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
49. महावीर पुराण
50. वरांग चरित्र
51. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
52. पाण्डव पुराण
53. पार्श्वनाथ पुराण
54. त्रिवेणी
55. सुशीला उपन्यास
56. भरतेश वैभव
57. गागर में सागर (प्रवचन)
58. स्वाति की बूँद (प्रवचन)
59. दशामृत (प्रवचन)
60. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
61. चूको मत (प्रवचन)
62. जय बजरंग बली (प्रवचन)
63. चैन की जिन्दगी (प्रवचन)
64. वसुनंदी उवाच (प्रवचनांश)
65. सम्राट चन्द्रगुप्त (प्रवचन)
66. जीवन का सहारा (प्रवचन)
67. तैयारी जीत की (प्रवचन)
68. श्रुत निर्झरी (प्रवचन)

69. उत्तम क्षमा (प्रवचन)
70. मान महा विष रूप (प्रवचन)
71. तप चाहें सुर राय (प्रवचन)
72. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे (प्रवचन)
73. निज हाथ दीजे साथ लीजे (प्रवचन)
74. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो (प्रवचन)
75. रंचक दगा बहुत दुःख दानी (प्रवचन)
76. लोभ पाप को बाप बखाना (प्रवचन)
77. सतवादी जग में सुखी (प्रवचन)
78. उत्तम ब्रह्मचर्य (प्रवचन)
79. नारी का धवल पक्ष (प्रवचन)
80. खुशी के आंसू (प्रवचन)
81. आईना मेरे देश का (प्रवचन)
82. न मिटना बुरा है न पिटना (प्रवचन)
83. सर्वोदयी नैतिक धर्म (प्रवचनांश)
84. मीठे प्रवचन 1,2,3,4 (प्रवचन)
85. शायद यही सच है (प्रवचन)
86. क्षरातीत अक्षर (प्रवचन)
87. दिगम्बरत्व : क्या, क्यों, कैसे? (प्रवचन)
88. जिनदर्शन से निजदर्शन (प्रवचन)
89. निश भोज त्याग : क्यों? (प्रवचन)
90. जलगालन : क्या, क्यों, कैसे? (प्रवचन)
91. धर्म : क्या, क्यों, कैसे? (प्रवचन)
92. चन्द्रप्रभ विधान (विधान)
93. दुःखों से मुक्ति (विधान)
94. शान्तिनाथ विधान (विधान)
95. अजितनाथ विधान (विधान)
96. श्रद्धा के अंकुर (विधान)
97. पूजा-अर्चना (विधान)
98. सदार्चन सुमन (विधान)
99. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह (विधान)
100. पंचपरमेष्ठी विधान (विधान)
101. श्री शान्तिनाथ, भक्तामर सम्मेदशिखर विधान (विधान)
102. निज अवलोकन
103. धम्म रसायण
104. जिन श्रमण भारती
105. रयणसार
106. योगामृत भाग-1
107. योगामृत भाग-2
108. आध्यात्मतरंगिणी
109. योगसार भाग-1
110. योगसार भाग-2
111. भव्य प्रमोद
112. तत्त्वार्थ सार
113. कल्याण कारक
114. आराधनासार
115. तनाव से मुक्ति - 1
116. तनाव से मुक्ति भाग-2
117. उपासकाध्ययन भाग-1
118. उपासकाध्ययन भाग-2
119. नीतिसार समुच्चय
120. सिन्दूर प्रकरण
121. प्रबोध सार
122. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
123. पुण्य वर्द्धक
124. चौंतीस स्थान दर्शन
125. सार समुच्चय
126. दान के अचिन्त्य प्रभाव
127. आहार दान
128. कुरलकाव्य
129. धर्म संस्कार भाग-1
130. धर्म संस्कार भाग-2
131. प्रकृति समुत्कीर्तन
132. भगवती आराधना
133. निर्ग्रंथ आराधना
134. निर्ग्रंथ भक्ति
135. कर्मप्रकृति
136. नौ-निधि
137. पंचरत्न
138. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
139. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
140. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
141. तत्त्वार्थ सूत्र
142. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
143. भावत्रय फलप्रदर्शी

144. सच्चे सुख का मार्ग
145. कर्म विपाक
146. अन्तर्यात्रा
147. सुभाषित रत्न संदोह
148. मेरा संदेशा
149. धर्मबोध संस्कार 1, 2, 3, 4
150. सप्त अभिशाप
151. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
152. कल्याणी
153. कलम-पट्टी बुद्धिका
154. खोज क्यों रोज-रोज
155. जागरण
156. णंदिणंद सुत्तं
157. डॉक्टरों से मुक्ति
158. आ जाओ प्रकृति की गोद में
159. धर्मरत्नाकर
160. हाइकू
161. स्वप्न विचार
162. विषापाहार स्तोत्र
163. हीरों का खजाना
164. तत्त्वभावना
165. धर्म की महिमा
166. जिन कल्पि सूत्रम्
167. विद्यानंद उवाच
168. सफलता के सूत्र
169. तत्त्वज्ञान तरंगनी
170. जिन कल्पि सूत्रम्
171. णमोकार महार्चना
172. समाधि तंत्र
173. सुख का सागर चालीसा
174. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
175. बोधि वृक्ष
176. दिव्यलक्ष्य
177. आधुनिक समस्याऐं प्रमाणिक समाधान
178. वसुऋद्धि
179. संस्कारादित्य
180. मुक्तिदूत के मुक्तक
181. जिन सिद्धान्त महोदधि
182. गुण रत्नाकर
183. आज का निर्णय
184. गुरु कृपा
185. तत्त्व विचारो सारो
186. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
187. मूलाचार प्रदीप
188. गुरुवर तेरा साथ
189. सद्गुरु की सीख
190. चार श्रावकाचार
191. पग वंदन

प्रेस में :-

1. फर्श से अर्श तक
2. स्वास्थ्य बोधामृत
3. कुछ कलियाँ कुछ फूल
4. प्रभाती संग्रह
5. आदिनाथ विधान
6. मुनिसुव्रतनाथ विधान
7. नेमिनाथ पुराण
8. नवग्रह विधान
9. आराधाना समुच्चय
10. सरस्वती आराधना
11. जैन धर्म की क ख ग
12. मल्लिनाथ पुराण

प.पू. आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज
के जीवन चरित्र पर आधारित

1. दृष्टि दृश्यों के पार
2. अक्षर शिल्पी
3. समझाया रविन्दु न माना
4. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (प्रेस में)